रामायण और भारत-संस्कृति

लेखक
प्रबोध चन्द्र सेन
अनुवादिका
सुमिता सिन्हा

श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्
(मानितविश्वविद्यालयः)

भारतीय समाज व संस्कृति की आलोचना के लिए रामायण के तात्पर्य का अनुधावन अपरिसीम महत्त्व रखता है। रामकथा को अवलम्बन बनाकर ही भारतीय संस्कृति का वैचित्र्य और विकास साधित हुआ है। प्राचीन युग में कालिदास का रघुवंश, मध्ययुग में रामानन्द-कबीर की साधना और आधुनिक युग में महात्मा गाँधी की रामराज्य की कल्पना, भारतवर्ष के उस चिरन्तन अक्षय स्वप्न का रूप परिग्रह-प्रयास का ही अखण्ड इतिहास है। 'रामायण', 'रामायण की मर्मकथा', 'रामायत धर्म' 'रामराज्य' और 'रामराज्य और आधुनिक भारत'—इन निबन्धों में मनस्वी लेखक ने उसी इतिहास की विस्मयकारी आलोचना प्रस्तुत की है।

रामायण
और
भारत-संस्कृति

संस्कृत विद्यापीठ ग्रन्थमाला पुष्प-६१

रामायण
और
भारत-संस्कृति

प्रधान सम्पादक

प्रो० वाचस्पति उपाध्याय

सम्पादक

प्रो० रमेश कुमार पाण्डेय

लेखक

प्रबोध चन्द्र सेन

अनुवादिका

सुमिता सिन्हा

प्रकाशक

श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ

२००१

प्रकाशक
प्रो० वाचस्पति उपाध्याय
कुलपति
श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ
कटवारिया सराय, नई दिल्ली-११००१६

ISBN : 81-87987-03-0

प्रथम संस्करण २००१

मूल्य :

मुद्रक
अमर प्रिंटिंग प्रैस
विजय नगर, दिल्ली-९
दूरभाष : ७२५२३६२

प्ररोचना

रामायण भारतीय साहित्य का प्रमुख उत्स है । उपजीव्य काव्य के रूप में उत्तरवर्त्ती साहित्य जगत् को अनुप्राणित करते हुए इस आर्ष-काव्य ने मानव हृदय को अपने मार्मिक उपदेशों से प्रभावित किया है । कविता धारा की सहज शैली में निबद्ध रामायण मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के चरित के माध्यम से आदर्श मानव समाज को प्रस्तुत करता है । यह भौतिक विवादों से निकलकर अध्यात्ममार्ग में प्रवृत्त होने और परम पुरुषार्थ प्राप्त करने का उत्तम उपदेश करता है ।

प्रस्तुत कृति आचार्य प्रबोध चन्द्र सेन द्वारा प्रथमत: बंगला भाषा में निबद्ध हुई, जो बंगलाभाषी विद्वत्समाज में अत्यन्त समादृत हुई । संस्कृत-हिन्दी के विद्वज्जन भी इस रचना का आनन्द प्राप्त कर सकें, इस अभिप्राय से इसका हिन्दी अनुवाद श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ प्रकाशित कर रहा है । इस कार्य के लिए मैं अनुवादिका सुमिता सिन्हा को धन्यवाद देता हूँ ।

मुझे आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि यह कृति रामायण के प्रबुद्ध पाठकों को एक नई दृष्टि प्रदान करेगी ।

शोध-प्रकाशन विभाग के आचार्य डॉ० रमेश कुमार पाण्डेय को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ, जिनके सत्प्रयास से यह ग्रन्थ प्रकाशित हो सका । अमर प्रिंटिंग प्रेस के अधिकारी भी धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्होंने इसका समुचित मुद्रण सम्पन्न किया ।

—प्रो० वाचस्पति उपाध्याय

कुलपति

श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ,

नई दिल्ली-१६

सम्पादकीय

रामायण की रचना की पृष्ठभूमि अत्यन्त मार्मिक है । निषाद द्वारा विद्ध क्रौञ्च की विरहवेदना से व्याकुल क्रौञ्ची की आर्त्त वाणी सुनकर करुणापूरित महामुनि वाल्मीकि का हृदय द्रवित हो उठा । मुनि ने उसी आवेश में निषाद को शाप दिया कि—"तुम अनन्त वर्षों तक प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त करो ।" यह लौकिक छन्द का प्रथम अवतार था, जिससे स्वयं वाल्मीकि जी विस्मत थे । उनका विस्मय तब शान्त हो गया, जब उन्हें ज्ञात हुआ कि इस छन्द का अवतार विशेष प्रयोजन से हुआ है, किसी आदर्श चरित्र के वर्णन द्वारा मानव समाज के अभ्युत्थान में इसका सदुपयोग होगा । उत्कृष्ट चरित्र की खोज में वाल्मीकि ने नारद से राम के चरित्र का ज्ञान प्राप्त किया और रामायण की रचना की ।

राम के आदर्श जीवन को आधार बनाकर वाल्मीकि जी ने भारतीय समाज के जिस स्वरूप का चित्रण किया है, उस पर अनेक ग्रन्थों का निर्माण किया जा चुका है, फिर भी, नित्य नवीन दृष्टिकोणों से इस महनीय ग्रन्थ का अनुशीलन हो रहा है । आचार्य प्रबोधचन्द्र सेन द्वारा मूलत: बंगला भाषा की यह कृति भारतीय समाज के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में रामायण की व्याख्या का एक नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है । अनुवाद कार्य होते हुए भी यह शैली एवं अभिव्यक्ति में सहजता के कारण पाठक को आकर्षित करने में पूर्णत: सक्षम है ।

पर्याप्त प्रयास के बाद भी इसमें कुछ अशुद्धियाँ रह सकती हैं, जिसके लिए पाठकों से क्षमायाचना पूर्वक निवेदन है कि स्वयं समाधान करते हुए उचित संशोधन के लिए निर्देश करने की कृपा करेंगे ।

—प्रो० रमेशकुमार पाण्डेय
आचार्य, शोध-प्रकाशन विभाग
श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ,
नई दिल्ली-१६

परिचायिका

आचार्य प्रबोध चन्द्र सेन गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर के आमंत्रण पर शान्ति निकेतन आए थे। वे पूर्वबंगाल में कार्यरत थे अतएव तत्काल वे वहाँ से अवसर न पा सके। गुरुदेव के आमन्त्रण के एक वर्ष पश्चात् १९४२ ई. में वे शान्ति निकेतन पहुँच सके। भारत के प्राचीन इतिहास और संस्कृति के वे मेधावी अध्येता थे। साथ ही भारतीय साहित्य में उनकी विशेष रुचि थी। रवीन्द्र-साहित्य का उनका अध्ययन बहुत गहन था। उनके अनेक कृती छात्र आज विश्वविद्यालयों की शोभा बढ़ा रहे हैं। छंद:शास्त्र में उनकी विशेष पैठ है। हिन्दी और बंगला में प्रयुक्त छन्दों का उन्होंने तुलनात्मक अध्ययन कराया है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर के काव्य में प्रयुक्त छंदों का उन्होंने गंभीर अध्ययन किया है। उनकी कृति **छन्दोगुरु रवीन्द्रनाथ** विद्वत्समाज में बहुत प्रिय हुई। विद्वन्मंडली उन्हें छान्दसिक आचार्य सेन के नाम से भी जानती है। राष्ट्रगीत **जन गण मन** का उन्होंने जो प्रामाणिक अध्ययन प्रस्तुत किया है, उसका अनुवाद अनेक भाषाओं में प्रकाशित हुआ है।

आचार्य सेन के अध्ययन का क्षेत्र बहुत व्यापक और विस्तृत रहा है। रामायण से लेकर अशोक के शिलालेख, आधुनिक साहित्य की सभी विधाओं और सभी कालों की संस्कृति पर उन्होंने विशद विचार किया है। शिक्षा के क्षेत्र में भी उनका योगदान उल्लेखनीय रहा है। विश्वभारती में शिक्षा समिति के सदस्य के रूप में उन्होंने प्रयत्न किया कि भारतीय भाषाओं का पाठ्यक्रम यथासंभव समान होना चाहिए। उनका मत था कि भाषाएँ अलग होते हुए भी उनमें वैचारिक एकता है।

आचार्य सेन की कृति **रामायण और भारतसंस्कृति** में भी यही भाव मिलता है। मुझे विश्वास है कि इस कृति का पाठक स्वागत करेंगे।

३ मार्च १९९८
२८ पूर्व पल्ली
शान्ति निकेतन

रामसिंह तोमर
पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष
हिन्दी विभाग
प्रोफ़ेसर एमरीट्स-विश्व भारती

निवेदन

रामायण काव्य में भारतीय संस्कृति का अन्यतम सर्वांगीण और सुसमञ्जस प्रकाश हुआ है । इस काव्यग्रन्थ में भारतसंस्कृति के विविध आयाम जैसे सुसंगत और उज्ज्वल रूप से चित्रित हुए हैं, वैसे किसी एक ग्रन्थ में शायद कहीं भी चित्रित नहीं हुए हैं । इसके उपरान्त रामायण ने भारत संस्कृति को मात्र उजागर ही नहीं किया शताधिक वर्षों से उसे नियंत्रित भी किया । रामायण कथा और रामचरितादर्श द्वारा भारतवर्ष के व्यक्तिजीवन, गार्हस्थ्य जीवन, सामाजिक जीवन ही नहीं अपितु राष्ट्रीय जीवन-धारा भी सुस्पष्ट रूप से उद्‌भासित और गम्भीर रूप से नियंत्रित हुई है । दूसरे किसी देश का जातीय जीवन किसी एक काव्यग्रन्थ द्वारा इस प्रकार परिपूर्णरूप से प्रकाशित व नियंत्रित हुआ हो-यह पता नहीं ।

भारतवर्ष की संस्कृति और जातीय जीवन के विविध आयाम जिन नीतियों द्वारा नियमित होते हैं उसी का साधारण नाम है धर्म । भारतीय धर्मशास्त्रों में इन नीतिसमूहों का संकलन हुआ है । यह कहना अनावश्यक है कि सभी भारतीय धर्मशास्त्र ब्राह्मण्यादर्श पर प्रतिष्ठित है । इन शास्त्रों में नीति के रूप में जीवनचर्या का जो आदर्श उभरा है, रामायण काव्य में वही वास्तव दृष्टान्त के आकार में अंकित हुआ है । नरदेवता रूपी रामचन्द्र के चरित्र में विशिष्टतम प्रकाश हुआ है । रामायण के उत्तर काण्ड में हमें उसका पूर्णतम परिचय मिलता है ।

रामचरित में ब्राह्मण्यधर्माश्रित जीवनादर्श का जो परिचय हमें आधुनिक युग में भी मिलता है, उसने युगों से कम से कम कालिदास पूर्व काल से रामकथा को अवलम्ब बनाकर भारतीय जनजीवन पर अपना प्रभाव विस्तृत कर रखा था, इसमें कोई सन्देह नहीं है । कालिदास काव्य में स्पष्टरूप से यह उल्लिखित हुआ है कि रघुवंशीय नृपति और उनके प्रजाओं की जीवनचर्या मन्वादिशास्त्रानुमोदित और चिरानुसृत धर्मपथ के अनुसरण से परिचालित होती थी—

'आत्मनोर्वर्त्मन: परम्' । परवर्ती युग में तुलसीदास (सोलवीं शती) को रामचरितमानस काव्य में रामराजत्व की वर्णना-प्रसंग के संदर्भ में कहा गया है—

बरनास्रम निज निज धरम-
निरत वेदपथ लोग ।
चलहिं सदा पावहिं सुख
नहिं भय-सोक न रोग ॥

—उत्तरकाण्ड, दोहा ४३

अर्थात्, रामराजत्वकाल में सभी लोग वर्णाश्रम के अनुसार अपने अपने धर्म में रत वेदपन्थी रहकर सर्वदा ही सुखी रहे, भय शोक या रोग कुछ भी न रहा ।

आधुनिक युग में स्वधर्मनिष्ठ मनस्वी भूदेव ने भी कहा है कि हिन्दुओं के आदर्श नरनारी श्रीरामचन्द्र व सीता हैं और हिन्दू समाज के शीर्षस्थानीय ब्राह्मण के आदर्श हैं महर्षि वशिष्ठ ।

परन्तु यह भी सत्य है कि रामायण मूलत: ब्राह्मण्य आदर्श की पुन: प्रतिष्ठा का प्रयोजन हुआ, तभी रामायण को ब्राह्मण्य धर्म के अनुकूल नए रूप से ढाला गया । रामायण के उत्तर काण्ड का संयोजन इसी समय हुआ था और इसी काण्ड में ब्राह्मण्य धर्मराज्य के आदर्श की भी प्रतिष्ठा की गई थी । पर कभी, निस्सन्देह ही अशोक के पूर्ववर्त्ती युग में रामकथा का वर्तमान रूप न था और भारतीय समाज का भी अन्य रूप था । भारतीय समाज एवं धर्मादर्श के विवर्तन के संग ही रामायण का भी विवर्तन हुआ है । इसी प्रकार जातीय जीवन की विवर्तन धारा रामायण कथा में प्रतिफलित हुई है । इतना ही नहीं, विवर्तन धारा के प्रत्येक स्तर पर भारतीय जनजीवन भी प्रभावित-नियंत्रित हुआ है । ये नियंत्रण क्षमता और प्रभाव कालक्रम में क्षीयमान न होकर उत्तरोत्तर गहरा होता चला गया और धर्म, समाज और साहित्य के नाना क्षेत्रों में प्रसारित हुआ ।

अतएव यह कहना निष्प्रयोजन है कि भारतीय समाज और संस्कृति की आलोचना के लिए रामायण के तात्पर्य के अनुधावन का महत्त्व अपरिसीम है । रामायण की पूर्णांग आलोचना सहजसाध्य नहीं है, और पूर्णांग आलोचना वर्तमान लेखक का अभिप्राय भी नहीं है । इस लघु पुस्तिका में भारतसंस्कृति पर रामायण-

प्रभाव के मात्र कुछ पहलुओं की आलोचना की गई है। वस्तुत: यह पुस्तक कोई पूर्ण परिकल्पना बनाकर नहीं लिखी गई है, यह भिन्न समय पर प्रकाशित कुछ प्रबन्धों का संकलनमात्र है। अतएव इस पुस्तिका में आलोचना की समग्रता या अखण्डता प्रत्याशित नहीं है। यहाँ तक कि भाषा एवं भाव की समता भी सर्वत्र रक्षित नहीं हुई है। भिन्न समय में रचित प्रबन्धों के संकलन में समता की रक्षा करना सम्भव नहीं है। यद्यपि ग्रन्थमुक्ति के समय प्रबन्धों को यथासम्भव परिमार्जित कर दिया है और प्रयोजन के अनुसार संशोधित और परिवर्धित भी किया है। फिर भी शायद कहीं कहीं कुछ असंगति व त्रुटि रह गई है। एक त्रुटि है पुनरुक्ति की। प्रबन्धों की स्वयंसम्पूर्णता की रक्षा के प्रयोजन से सर्वत्र इस त्रुटि को दूर करने का प्रयास नहीं किया गया है। समस्त पुनरुक्तिओं का वर्जन करने से प्रबन्धों की स्वतन्त्रता व्याहत होती, तथापि ग्रन्थ का ऐक्यविधान सम्भव नहीं होता। आशा है कि ग्रन्थकार की अनुसृत यह नीति पाठकों का अनुमोदन पाने में समर्थ होगी।

इस पुस्तक की आलोचना की धारा प्रधानत: ऐतिहासिक है—साहित्यिक या तात्त्विक नहीं। इसीलिए इस ग्रन्थ में प्रकाशित सभी मत (विचार) ऐतिहासिक दृष्टि से ही विचारणीय हैं। प्रथम प्रबन्ध में रामकथा और रामायण काव्य की विवर्तन की कथा भारतीय समाज के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में आलोचित हुई है। इसमें प्रसंगानुसार रामचरित-आदर्श और रामायण के विवर्तन सम्बन्धीय रवीन्द्रनाथ के विचार भी विस्तृत रूप से आलोचित और व्याख्यात हुए हैं। दूसरे प्रबन्धों में भी उनकी उक्ति प्रयोजनानुसार उल्लिखित या आलोचित हुई है। देवोपम रामचरित को आश्रय बनाकर किस प्रकार रामाश्रयी वैष्णव धर्म का उद्‌भव हुआ एवं उस धर्म ने भारतीय जीवन को कितनी गहराई तक प्रभावित नियमित किया है—इसकी आलोचना तृतीय प्रबन्ध में हुई है। और रामराज्य कल्पना में उद्दीपित आदर्शराष्ट्र-चिन्ता का परिचय देने की चेष्टा की है अन्त के दोनों प्रबन्धों में।

विभिन्न रचनाओं के सिद्धान्तों को यथासम्भव ऐतिहासिक तथ्य तथा सर्वजन श्रद्धेय मनस्वियों के अभिमत के सहारे प्रतिष्ठित करने की कोशिश की है, पाठक शायद ध्यान देंगे कि, इस ग्रन्थ के बहुत से सिद्धान्त ही प्रचलित धारणाओं के प्रतिकूल हैं। इससे शायद किसी किसी के मन में प्रतिवाद स्पृहा जागृत होगी। उनसे मेरा निवेदन है कि भ्रान्तिहीनता का मेरा कोई दावा नहीं है, मैंने यथासम्भव

निरपेक्षदृष्टि से सत्यनिर्णय का प्रयास किया है। विभिन्न चिन्तनधाराओं के संघात से ही पूर्ण सत्य का प्रकाश होता है। उस सत्य के आविष्कार में परोक्षरूप से भी यह ग्रन्थ थोड़ी भी सहायता करे, तो भी लेखक का अभिप्रायपूर्ण होगा।

(इस ग्रन्थ में संकलित प्रबन्धों के सामयिक पत्रों में प्रकाश का परिचय यथास्थान पर दिया गया है। यह कहना उचित होगा कि ग्रन्थाकार में प्रकाशित होने के समय में सभी प्रबन्ध प्रयोजनानुसार कुछ न कुछ संस्कृत और कोई कोई प्रबन्ध अंशतः पुनर्लिखित और परिवर्धित हुए हैं।)

रामायण और रामादर्श-विषयक निबन्धों को एकत्रित करके ग्रन्थाकार में प्रकाशित करने की आवश्यकता पर सर्वप्रथम मेरा ध्यान आकर्षित किया था मेरे प्राक्तन छात्र तथा वर्तमान में यादवपुर विश्वविद्यालय के अध्यापक श्रीमान् देवीपद भट्टाचार्य ने। वस्तुतः इस पुस्तक के प्रकाशन के मूल में उन्हीं का अनुरोध है, इसके उपरान्त इस ग्रन्थ के प्रकाशन व मुद्रण का समस्त दायित्व सहर्ष मेरे जामाता प्रेसिडेन्सी कोलेज के बंगला विभाग के अध्यापक श्रीमान् भवतोष दत्त ने अपने ऊपर ले लिया। मेरे सहकर्मी अध्यापक श्री दुर्गेश चन्द्र बन्द्योपाध्याय ने भी समय समय पर विविध विषयों में मेरी सहायता की है। इस ग्रन्थ के प्रकाशक श्रीमान् श्रीशकुमार कुण्डु के साग्रह यत्न से इस ग्रन्थ का आशु व सुष्ठु प्रकाशन सम्भव हुआ है। इस अवसर पर उन सभी के प्रति स्नेह व प्रीतिज्ञापन करता हूँ।

विश्वभारती, शान्तिनिकेतन **प्रबोधचन्द्र सेन**

७ चैत्र १३६८

विषय सूची

रामायण

सदूषणापि निर्दोषा सखरापि सुकोमला।
नमस्तस्मै कृता येन रम्या रामायणी कथा ।।

भारतवर्ष के इतिहास में रामायण का स्थान कहाँ है एवं भारतवासियों के जातीय जीवन में उसका विशिष्ट प्रभाव कहाँ तक है, इसका निर्णय करने के लिए इस देश के अन्यतम महाग्रंथ महाभारत के संग इसकी तुलना करनी होगी, किन्तु इसके पूर्व हमें इन दोनों महाग्रंथों के सामान्य विशेषताओं के सम्बन्ध में कुछ आवश्यक बातें करनी चाहिए, इस प्रसंग में रवीन्द्रनाथ कहते हैं—

"रामायण-महाभारत को मात्र महाकाव्य मानना ही पर्याप्त नहीं है, वह इतिहास भी है; घटनावलियों का इतिहास नहीं, क्योंकि इस प्रकार का इतिहास समय विशेष का सहारा लेता है—रामायण-महाभारत भारतवर्ष के चिरकालीन इतिहास हैं, दूसरे इतिहास समय समय पर कितने ही परिवर्तित हो चुके हैं, किन्तु इस इतिहास में परिवर्तन नहीं हुआ है, भारतवर्ष की जो साधना है, जो आराधना है, जो संकल्प है उसी का इतिहास इन दोनों विपुल काव्य हर्म्य में चिरकालीन सिंहासन पर विराजमान है ।"[१]

पर यह बात ध्यान में रखना आवश्यक है कि इन दोनों महाग्रंथों में भारतवर्ष का एक ही रूप प्रकट नहीं हुआ है, न तो वे एक दूसरे की पुनरुक्ति मात्र हैं, भारतवर्ष ने इन दोनों महाग्रंथों को किस रूप में ग्रहण किया है, किस ग्रंथ में भारतवर्ष ने अपने किन आदर्शों को प्रकाशित करना चाहा है, वह विचार्य है ।

---

१. रामायण (१९३३) प्राचीन इतिहास

वस्तुत: भारतवर्ष ने रामायण तथा महाभारत को कभी भी एक ही रूप में ग्रहण नहीं किया । महाभारत हमारे जातीय प्राणों में किस आसन पर विराजित है यह अत्यन्त स्पष्ट होकर प्रमाण वाक्य में प्रकट है "जो भारत में नहीं है, वह भारत में भी नहीं है," कहने का तात्पर्य यह है कि भारतवर्ष ने समग्र रूप में ही महाभारत ग्रंथ में स्वयं को अभिव्यक्त किया है, एकमात्र महाभारत को जानने से ही सम्पूर्ण भारतवर्ष को जाना जा सकता है । यह प्रमाण वाक्य निरर्थक नहीं है जिसका प्रमाण हमें रवीन्द्रनाथ की इस उक्ति में मिलता है:

"देश में ज़ो विद्या की चिरन्तन धारा, जो इतिहास की बात दूर-दूर तक बिखरी थी, यहाँ तक कि दिगन्त में विलुप्तप्राय हो चली थी, एक समय विशेष में उनको संगृहीत करने की, उनको समेटने का अत्यन्त आग्रह समस्त देश के मन में जगा था ।....इसमें एक प्रबल चेष्टा, अक्लान्त साधना, एक समग्र दृष्टि थी, इस प्रचेष्टा की महिमा को शक्तिमती प्रतिभा ने अपना लक्ष्य बनाया था उसका स्पष्ट प्रमाण महाभारत नाम में ही मिलता है । महाभारत के महान् समुज्ज्वल रूप को जिन्होंने अपने ध्यान में देखा था, महाभारत नामकरण उन्हीं के द्वारा हुआ है । वह रूप एक ही साथ भौमण्डलिक तथा मानसिक हैं । उन्होंने अपने मन में भारतवर्ष के मन को देखा था ।"[१]

वस्तुत: महाभारत सर्वांगीण भारतीय संस्कृति का भंडार व विश्वकोष है, शिक्षा रवीन्द्रनाथ की भाषा में वह भारतवर्ष का 'जीवन्त विश्वविद्यालय' है, इस विश्वविद्यालय की डिग्री जो नहीं प्राप्त कर पाता है, भारतवर्ष उसके लिए अनजाना रह जाता है । महाभारत में भारतीय साधना व संस्कृति के संकलन व विन्यास करने की जो शक्ति प्रकाशित हुई है, भारतवर्ष ने उसे ही 'व्यास' नाम दिया है । भारतवर्ष ने इस संकलन व विन्यास-प्रतिभा या 'व्यास' को ही चतुर्वेद, अष्टादशपर्व महाभारत व अष्टादश महापुराण के संकलन कर्त्ता या रचयिता के रूप में कल्पना की है, क्योंकि भारतीय संस्कृति के इस महाकोष संकलन में एक ही विशेष शक्ति की क्रिया प्रकाशित हुई है । भारतीय संस्कृति के इतिहास में महाभारत का स्थान वेद व पुराण संग्रह के बीचों बीच है । इसीलिए महाभारत को जैसे पंचम वेद के नाम से अभिहित

---

१. विश्वविद्यालय का रूप (१९३३)

किया गया है, वैसे ही इसे आदिपुराण के नाम से भी वर्णित किया जा सकता है। वस्तुत: महाभारत के एक सांस्कृतिक महाकोष होने के कारण उसके स्वरूप वर्णन में कोई स्थिरता नहीं रह पायी है। महाभारत में ही देखते हैं कि इस ग्रंथ को वेद, इतिवृत्त, आख्यान, इतिहास, संहिता, पुराण, काव्य आदि बहुत से विभिन्न नामों से अभिहित किया गया है। विचार करने पर समझा जा सकता है कि इन नामों में कोई भी निरर्थक नहीं है; क्योंकि इन सब के लक्षण महाभारत में विद्यमान हैं। संकलन-ग्रंथों की यही स्वाभाविक विशेषता है, मूलत: महाभारत इस प्रकार का संकलन ग्रंथ था कि नहीं एवं इसका वास्तविक रूप क्या था इसका विस्तारित विचार हमारे लिए निरर्थक है। फिर भी केवल इतना कहना उचित होगा कि विद्वानों के अनुसार महाभारत मूलत: एक इतिहास था एवं तब उसका कलेवर भी अत्यन्त अल्पपरिसर का था, महाभारत में ही है, "जयनामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो विजिगीषुणा," उसके श्लोकों की संख्या भी कई हजारों में थी, क्रमश: उसमें उपाख्यान तत्त्वालोचन आदि जुड़ते जुड़ते उसका आयतन बढ़ने लगा, आज तो महाभारत के श्लोकों की संख्या एक लाख से भी अधिक है।

वस्तुत: जैसे महाभारत किसी एक व्यक्ति की रचना नहीं है, वैसे ही किसी एक काल की भी नहीं है, इस महाग्रंथ के आख्यान-उपदेशादि भारतवर्ष की विपुल जनता के बीच परिव्याप्त होकर विद्यमान थे। भारत की संकलन-प्रतिभा ने इनको समय-समय पर संग्रह करके एक विशेष ढाँचे में आबद्ध किया, इसी प्रकार भारत संहिता की उत्पत्ति हुई। महाभारत व्यास द्वारा कथित एवं गणदेवता द्वारा (समझ कर या बिना समझे) लिखित हुआ है, इस कहानी में भी महाभारत की उत्पत्ति का वास्तविक इतिहास निहित है। कहना न होगा कि इस विपुलयातन में रूपान्तरित होने में महाभारत को कई शताब्दियों का समय लगा। इसलिए इस साहित्य संग्रह में किसी एक युग की नहीं, कई युगों के चिह्न दिखाई पड़ते हैं। इस कहानी में, उपदेशों में, समाज वर्णन व आदर्शगत वैचित्र्य में कालगत विभिन्नता का प्रमाण आज भी स्पष्ट रूप में मिलता है, विद्वानों के अनुसार महाभारत का आरंभ संभवत: ईसा पूर्व छठीं शताब्दी के आसपास किसी समय में हुआ था एवं उसकी समाप्ति पाँचवीं शताब्दी ई. के आसपास हुई थी, इस सहस्राधिक वर्षों के भारतवर्ष का मर्म-इतिहास समग्र रूप से महाभारत में समाहित है।

इस इतिहास के प्रकाश में न देखने पर वर्तमान भारत को भी यथार्थ रूप में नहीं देखा जा सकता क्योंकि आधुनिक भारत अब भी महाभारत युग के संग अविछिन्न बंधन में आबद्ध है। इस विषय में रवीन्द्रनाथ की यह उक्ति उल्लेखनीय है—

"भारतवर्ष के मन ने स्वयं को अतीत व भविष्य के किसी ऐक्य सूत्र में ग्रंथित नहीं किया, इसे स्वीकार नहीं कर पाता हूँ, वह सूत्र सूक्ष्म है, किन्तु उसका प्रभाव सामान्य नहीं; वह स्थूल रूप में गोचर नहीं किन्तु उसने आज तक हमें विच्छिन्न-विक्षिप्त नहीं होने दिया है। यह बात नहीं है कि उसने सर्वत्र वैचित्र्यहीन साम्य स्थापित किया किन्तु समस्त वैचित्र्य व वैषम्य के भीतर ही भीतर एक मूलगत अप्रत्यक्ष योगसूत्र विद्यमान है। इसीलिए महाभारत में वर्णित भारत एवं वर्तमान शताब्दी के भारत में विविध बड़े-२ विषयों में विभिन्नता होने पर भी उभय में एक जन्मजात योग विच्छिन्न नहीं हुआ, वही योग भारतवर्ष के लिए सर्वोपेक्ष सत्य है एवं उसी योग का इतिहास ही भारतवर्ष का यथार्थ इतिहास है।"

—धम्मपदंग (१९०५) भारतवर्ष

(२)

रामायण को वेद पुराण-संहिता धर्मशास्त्र आदि नामों से अभिहित करने की रीति नहीं है। वह व्यास कथित एवं गणेश द्वारा लिखित भी नहीं है। भारतवर्ष ने रामायण को विपुल व्यास मण्डल के बहिर्भाग में स्थापित किया है, वह निरर्थक नहीं, रामायण व्यास साहित्य के अंतर्गत नहीं है यहीं उसका वैशिष्ट्य है। वस्तुत: रामायण व्यक्ति विशेष की रचना रूप में ही स्वीकृत है। इस रचना की प्रकृति के संबंध में भी द्वैमत नहीं है क्योंकि वाल्मीकि भारतवर्ष के आदिकवि एवं रामायण आदिकाव्य के रूप में ही सर्वस्वीकृत है। रामायण पूर्व इस देश में कवित्व नहीं था, यह स्वीकारा नहीं जा सकता। ऋग्वेद के कई अंश (जैसे उषा वंदना) में चरम कवित्व का प्रकाशन देखा जा सकता है किन्तु ऋग्वेद के सूक्तों को कभी भी कविता रूप में वर्णित नहीं किया जाता है, वैदिक ऋषि भी कवि पर्याय में गण्य नहीं होते हैं, उपनिषद् में भी विभिन्न स्थलों पर कवित्व का उज्ज्वल प्रकाश विद्यमान है किन्तु वह भी सचेतन काव्य रूप में स्वीकृत नहीं है। महाभारत के अनेक अंश संभवत:

रामायण के पूर्ववर्ती हैं एवं उनमें भी उच्च कोटि का काव्यगुण विद्यमान है किन्तु व्यास देव को कभी भी कवि का आसन नहीं दिया गया एवं महाभारत को कभी भी समग्र रूप से काव्य रूप में वर्णित नहीं किया जा सकता, वस्तुत: रामायण ही आदिकाव्य है इसका प्रमाण यह है कि इसके प्रत्येक काण्ड कई सर्गों में विभाजित है । यह सर्ग विभाजन ही काव्य का प्रमुख लक्षण है; कवि की कल्पना प्रतिभा की सर्जना का नाम ही सर्ग है । रामायण के पूर्ववर्त्ती साहित्य में यह सर्ग विभाजित नहीं देखा जाता है, जैसे ऋग्वेद मण्डलों में विभाजित है एवं यह मण्डल सूक्तों में विभक्त है; महाभारत के पर्व भी अध्याय में विभाजित हैं ।

अतएव इस विषय में कोई सन्देह नहीं रह जाता है कि महाभारत एवं रामायण सम्पूर्णत: भिन्न प्रकार के साहित्य हैं । जबकि यह आश्चर्य का विषय है कि भारतवर्ष ने हमेशा ही व्यास-वाल्मीकि एवं रामायण-महाभारत की एक ही कोटि में गणना की है । विदेशी मनीषियों ने भी इन दोनों ग्रंथों को बिना-द्विधा के भारतवर्ष के युगल महाकाव्य और एपिक के रूप में स्वीकार कर लिया है । निश्चित रूप से किसी निगूढ़ ऐक्य ने बाह्य विभिन्नता के होने पर भी इन दोनों महाग्रंथों को समान मर्यादा पर प्रतिष्ठित किया है । इस अंतर्निहित ऐक्य का संधान प्राप्त करने से इनकी विशिष्टता भी प्रस्फुटित हो उठेगी, पहले ही कहा जा चुका है कि महाभारत मूलत: इतिहास था, बाद में क्रमश: उसमें पुराण व धर्मशास्त्रादि के लक्षण आरोपित हुए, रामायण कभी भी यथार्थ इतिहास के रूप में स्वीकृत नहीं हुआ है । रवीन्द्रनाथ की इस उक्ति की सत्यता भी स्वीकार्य है कि रामायण-महाभारत भारतवर्ष के चिरकालीन इतिहास हैं । किस अर्थ में रामायण-महाभारत को भारतवर्ष का चिरकालीन इतिहास कहा जाता है इस पर विचार करने से पूर्व यह देखना आवश्यक है कि साधारण रूप में इन दोनों महाग्रंथों का ऐतिहासिक मूल्य कितना है ।

(३)

कुरु पाण्डवों का विवाद और कुरुक्षेत्र का युद्ध घटना के रूप में ऐतिहासिक सत्य है कि नहीं इसका कोई प्रमाण नहीं यह सम्भवत: सत्य नहीं, परन्तु शान्तनु धृतराष्ट्र, अर्जुन, कृष्ण, परीक्षित, जनमेजय आदि ऐतिहासिक व्यक्ति हैं, इस विषय में सन्देह नहीं किया जा सकता किन्तु इनके पारस्परिक संबंध व पूर्वापर संबंध के

विषय में कुछ भी जाना नहीं जाता, तो फिर महाभारत की ऐतिहासिकता कहाँ है ? भारतवर्ष के तत्कालीन समाज विवर्तन का चित्र आदर्श की विभिन्नता व संघात नदी पर्वत जनपद आदि भौगोलिक संस्थान आदि समस्त विषयों का प्रत्यक्ष परिचय प्राप्त करने के लिए हमें महाभारत का आश्रय लेना पड़ता है, कालिदास के कुमार संभव काव्य में कवि के तत्कालीन समाज का चित्र जिस प्रकार परोक्ष रूप से प्रतिफलित हुआ है वैसा महाभारत में नहीं हुआ, भारतवर्ष में युगों से जो आख्यान-उपाख्यान-उपदेशादि प्रचलित थे महाभारत में उन्हें ही सचेतन रूप से संकलित किया गया है । इसीलिए यह ग्रंथ तत्कालीन भारतवर्ष की चिन्ता व चरित्र के महान इतिहास ग्रंथ के रूप में मर्यादित होता है ।

रामायण प्रत्यक्षतः कविकल्पना की सृष्टि है, तत्कालीन प्रचलित कहानी व जन-श्रुति को संकलन करने का कोई प्रत्यक्ष अभिप्राय इस ग्रंथ की रचना के मूल में नहीं है । वस्तुतः कवि ने सचेतन रूप से प्रचलित कहानी को ही काव्य सृष्टि के प्रयोजन अनुसार रूपांतरित कर लिया है । जिस कहानी का अवलम्बन लेकर रामायण काव्य रचित है वह कहानी कवि कल्पित नहीं है । वह कहानी जन समाज में प्रचलित थी जिसका प्रमाण यह है कि महाभारत में संकलित उपाख्यान समूह में रामोपाख्यान अन्यतम है । बौद्ध पालि साहित्य में भी रामकथा पायी जाती है । इन सब कथाओं में महत्त्वपूर्ण पार्थक्य देखा जा सकता है । जिस रामकथा ने भारतवर्ष की सीमा पार करके यवद्वीप बलिद्वीप में जनप्रियता अर्जित की उनमें भी कुछ महत्त्वपूर्ण विषयों में रामायण के संग पार्थक्य है, इस कहानी के मूल में कोई ऐतिहासिकता थी या नहीं निस्संशय रूप से नहीं कहा जा सकता, विदेहराज जनक अवश्य ही ऐतिहासिक हैं किन्तु जनक दुहिता सीता ऐतिहासिक नहीं है । राम लक्ष्मण आदि प्रधान पात्रों के अस्तित्व भी प्रमाणित नहीं है । इन सब कारणों से विद्वानों का मानना है कि रामायण-कथा के मूल में संभवतः वास्तव घटना मूलक कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है । तथा बहुतों का यह भी मानना है कि रामायण कथा मूलतः रूपकात्मक है । रवीन्द्रनाथ भी इस रूपकात्मकता में ही विश्वास करते थे । नाना अवसरों पर उन्होंने इस विषय पर अनुकूल विचार प्रकट किए, यहाँ उनके 'भारतवर्ष के इतिहास की धारा' नामक प्रबंध एवं 'रक्त करबी' नाटक (प्रथम संस्करण) की प्रस्तावना विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं ।

रामायण के रूपकार्थ का अब थोड़ा परिचय दिया जा सकता है। इस काव्य के केन्द्रस्थल पर सीता हैं, यह बात सर्वजन विदित है कि सीता का अर्थ हल रेखा है। राजा जनक के हलमुख से उनकी उत्पत्ति हुई थी एवं उनके पाताल-प्रवेश की कहानी से भी सीता के स्वरूपार्थ का समर्थन मिलता है। राम के नवदूर्वादल श्याम वर्ण से ज्ञात होता है कि राम वस्तुत: कृषि गत शस्य श्यामल रमणीयता के ही नामांतर है। पुराणोक्त अन्य दोनों रामों का स्वरूप भी ऐसा ही लगता है। हलधर राम को सीतापति राम से अभिन्न मान लेना असंगत नहीं है। तृतीय राम रेणुका-पुत्र है एवं वह मातृहन्ता है, ऐसा प्रतीत होता है कि इस कहानी में मरुभूमि की ऊसरता को विनष्ट कर श्यामलता की सृष्टि की ओर इशारा किया गया है। इस प्रसंग में यह भी स्मरण रखना आवश्यक है कि सीतापति राम को पाषाणी अहल्या (अर्थात् हल चलाने के अयोग्य कठिन) भूमि के उद्धारकर्त्ता के रूप में वर्णित किया गया है। रवीन्द्रनाथ के 'अहल्यार प्रति' कविता (१८९०) के निम्नोद्धृत अंश स्मरणीय है—

जीवन-उत्साह

छुटित सहस्रपथे मरुदिग्विजये
सहस्र आकारे, उठित से क्षुब्द हये
तोमार पाषाण घेरि, करिते निपात
अनुर्वरा-अभिशाप तव।

—'अहल्यार प्रति' (१८९०) मानसी,

"जीवन-उत्साह मरुदिग्विजय पर धावित होता सहस्र पथों से सहस्र रूप में वह क्षुब्ध हो उठता तुम्हारे पाषाण के चारों ओर तुम्हारे अनुर्वरा अभिशाप को मिटाने के लिए।"

—अहल्यार प्रति (१८९०) मानसी

राम अर्थात् रमणीयता और लक्ष्मण का अर्थ कल्याणमय सम्पद है एकार्थ में लक्ष्मीवत्ता। लक्ष्मण को राम व सीता के सहचर रूप में वर्णित किया गया है जो स्वाभाविक ही है। जहाँ सीता है वहीं एक ओर सौन्दर्य और दूसरी ओर संपदा है।

यह रामायण के रूपकार्थ का एक पक्ष है और एक पक्ष है स्वर्ण लंका की कथा, रवीन्द्रनाथ ने कहा है—

"स्वर्णलंका सिंहल में है इसे लेकर आज न जाने कितनी बातें उठ रही हैं, वस्तुत: पृथ्वी के नाना स्थल में नाना स्तर में स्वर्णलंका का परिचय पाया जाता है। कविगुरु के उस अनिर्दिष्ट परन्तु सुपरिनिष्ठित स्वर्ण लंका का समाचार पाया था इसमें कोई सन्देह नहीं। अगर वह स्वर्ण लंका खनिज सोने से युक्त एक विशेष स्थान में प्रतिष्ठित होता तो पूँछ की आग से वह भस्म न होकर और भी उज्ज्वल हो उठता।"

—प्रस्तावना (१३३१) रक्तकरबी (प्रथम संस्करण)

यह स्वर्ण ऐश्वर्य का धन है, कृषि संपत्ति का नहीं। लंकाधिपति के विपुल ऐश्वर्य व प्रताप का परिचय हमें उनके दस सिर व बीस हाथों के वर्णन से मिलता है। त्रेतायुग के बहुसंग्रही बहुग्रासी रावण ने वज्रविद्युत धारी देवताओं को अपने प्रासाद द्वार में शृंखलित कर उनसे काम लिया, इस विपुल ऐश्वर्य व शक्ति के अधिकारी का ही नाम रावण है और रावण का अर्थ रवकारयिता, आर्तनादकारयिता है। रामायण में ही है:

'यस्माल्लोकत्रयं चेतद् रावितं भयमागतम्।
तस्मात्त्वं रावणौ नाम नाम्ना राजन् भविष्यसि।।

देवता मानुषा यक्षा ये चान्ये जगतीतले।
एवं त्वामभिधास्यान्ति रावणं लोकरावणम्।।'

—उत्तरकाण्ड, १६/३७-३८

अर्थात्-हे राजन् (तुम्हारे कारण) यह तीनों लोक भीत व कोलाहल युक्त हुआ है, अतएव तुम रावण नाम से प्रसिद्ध होगे। देवता, मनुष्य, यक्ष, एवं जगत् के अन्य सभी लोक (जनसमूह के आर्तनादकारयिता) तुम्हें रावण कहकर ही अभिहित करेंगे।

महाभारत में भी इसके अनुरूप कथा है—

रावयामास लोकान् यत् तस्माद् रावण उच्यते ।
दशग्रीवः कामवेला देवानां भयमादधत् ॥

—वन पर्व, २७४/४०

अर्थात् महाबलशाली दशानन ने देवताओं में भी भय की उत्पत्ति की है । उन्होंने समस्त लोक में (भय) रव (आर्तनाद) कराया था जिस कारण उन्हें रावण कहा जाता है ।

रावण नाम की सार्थकता और भी स्पष्ट होगी यदि स्मरण हो कि उनके पुत्र का नाम मेघनाद एवं सहोदर का नाम विभीषण था ।

इस विभीषिका के प्रताप का उत्स स्वर्ण या धन है । इस विपुल धन के लोभ से ही आकृष्ट होकर स्वर्णाधिकारी ने कृषि जीवन को विपन्न कर दिया जिसका आभास हम मायावी स्वर्णमृग के लोभ से लुब्ध सीताहरण की कहानी में पाते हैं, इस स्वर्णमृग ने सीता को लुब्ध व राम लक्ष्मण (अर्थात् कृषिगत शोभा व संपदा) को विपन्न किया था जिसका यथार्थ नाम मारीच अर्थात् मरीचिका है । स्वर्ण मरीचिका से मुग्ध मनुष्य किस प्रकार स्वर्णाधिकारी राक्षस के शिकंजे में फँस कर शोभा सम्पद हीन हो जाता है, इसका परिचय हम त्रेता युग की कहानी में ही नहीं, वर्तमान युग में भी नित्य देखते हैं ।

कोन मायामृग कोथाय नित्य
स्वर्ण-झलके करिछे नृत्य,
ताहारे बाँधिते लोलुप चित्त
छुटिछे वृद्ध-बालके ।

—'नगरसंगीत', चित्रा (१८९६)

रवीन्द्रनाथ की यह उक्ति आधुनिक व प्राचीन उभय कालों के लिए ही सत्य है, यह मात्र कवि कल्पना नहीं, रक्तकरबी नाटक (प्रथम संस्करण, १९२६) की प्रस्तावना में रामायण के गूढ़ार्थ निर्णय प्रसंग में उन्होंने कहा है, "कृषि जिस दानवीय लोभ के आकर्षण से आत्मविस्मृत हुई है, त्रेतायुग में उसी वृतान्त को छिपाकर रूपक में कहने के लिए स्वर्ण-मायामृग रूप का वर्णन है ।"

मायावी स्वर्ण मृग के इस गूढ़ार्थ के सम्बन्ध में स्वयं वाल्मीकि भी सचेत थे जिसका आभास रामायण में ही मिलता है। सीता हरण का समय हेमन्त ऋतु था, तब चतुर्दिक् की वनभूमि शिशिर समाच्छन्न और ज्वार गोधूम आच्छादित और पक्व धानशीर्ष की स्वर्णिम आभास से दिगन्त उद्भासित था। पूरे वर्ष में हेमन्त ऋतु ही राम की प्रिय ऋतु थी, यद्यपि इस ऋतु में ही प्रबल प्रतापी रावण के हाथों सीता हरण घटित होता है। यह घटना तात्पर्यहीन नहीं और संभवत: स्वर्णमय मायामृग के लोभ में ही यह दुर्घटना घटित होती है, यह संभवत: निरर्थक नहीं, यह स्वर्णमृग मरीचिकामय है, यह भी नित्य सत्य है। इस स्वर्णमरीचिका को ही आधुनिक कवि ने 'स्वर्ण झलक' की आख्या दी है। प्राचीन और आधुनिक काल में जब भी धन के लोभ से धान अभिभूत होता है, तभी धान की स्वर्ण कांति धन के स्वर्ण कांति के सामने हार मान जाती है, तभी अकल्याण घटित होता है।

स्वर्ण मृग-रूपी मारीच स्वर्णमय धन सम्पदा का ही प्रतीक है, इसका आभास मायामृग के वर्णन में पाया जाता है। रावण मारीच को कहता है—

"सौवर्णस्त्वं मृगो भूत्वा चित्रो रजतबिन्दुभिः।
आश्रमे तस्य रामस्य सीतायाः प्रमुखे चर।
प्रलोभयित्वा वैदेहीं यथेष्टं गन्तुमर्हसि॥

—अरण्यकाण्ड, ४०/१७-१८

"रजत बिन्दु चित्रित स्वर्ण मृग होकर तुम राम के आश्रम में जाकर सीता के सम्मुख विचरण करो, तत्पश्चात् सीता को प्रलुब्ध कर तुम्हें जहाँ मन हो चले जाना।'

इस वर्णना में स्वर्णचाँदी के प्रति लोभ की बात प्रच्छन्न रूप में इंगित है। यह वर्णना आरण्य काण्ड में अन्यत्र (३६/१८) में भी पाई जाती है। इस काण्ड के ब्यालीसवें सर्ग में 'रत्नमय मृग' संबंध में 'रुप्य धातु' का उल्लेख भी है। इसके अतिरिक्त

मनोहरस्निग्धवर्णो रत्नैर्नानाविधैर्वृतः।.....
रौप्यैर्बिन्दुशतैश्चित्रं भूत्वा स प्रियनन्दः॥

अरण्य काण्ड ४२/१९-२२

अर्थात् सीता को प्रलुब्ध करने के लिए जो मायामृग प्रेरित हुआ था वह नानाविध रत्नभूषित व शत शत रौप्य बिन्दु से शोभित होकर एवं स्निग्धवर्ण प्रियदर्शन व मनोहर रूप धारण करके गया था।

परवर्ती सर्ग में 'हेमराजतवर्ण' की बात है। स्पष्ट है कि परिपूर्ण हेमंत में पक्व शस्य के स्वर्णिम परिवेश में धनरत्न स्वर्ण चाँदी के लोभ से ही अकल्याण घटित हुआ था, रामायण में भी इसका इंगित अस्पष्ट नहीं है।

धनरत्न की झलक से प्रलुब्ध कर कृषि लक्ष्मी को हरण करने के लिए माया विस्तार का यह जो अनतिप्रच्छन्न आभास है, उसका तात्पर्य आधुनिक काल में भी उपेक्षणीय नहीं। शिल्प संपदा का मायावी मारीच आज भी विश्व में सर्वत्र ही स्वर्ण झलक से प्रलुब्ध कर कृषि लक्ष्मी रूपिणी सीता-हरण के कार्य में लगा है। रामायण का यह रूपक चिरंतन सत्य है। त्रेतायुग से कलियुग तक यह सत्य व्यापकतर तात्पर्य अर्जित करता रहा है।

केवल 'अहल्यार प्रति' व 'नगर संगीत' कविता में एवं 'रक्त करणी' नाटक में ही नहीं, रवीन्द्र साहित्य में और भी नाना स्थल में रामायण के इस रूपकार्थ का उल्लेख व विश्लेषण हैं।

(४)

रामायण का यह रूपकार्थ जितना भी युक्तिसंगत क्यों न हो, काव्य रूप में यह कभी भी रामायण का मुख्य लक्ष्य नहीं रहा है। रामायण को रूपक काव्य रूप में ग्रहण करने पर उसका वास्तविक तथ्य ही अज्ञात रह जाएगा एवं साथ ही साथ रामायण में भारतवर्ष का जो रूप प्रकाशित हुआ है। वह भी अदृश्य हो जाएगा, रामायण में भारतवर्ष का जो रूप प्रकाशित हुआ है उसको सम्पूर्ण रूप से समझने के लिए रामायण कथा की उत्पत्ति व विवर्तन की धारा का अनुसरण करना आवश्यक है किन्तु उस इतिहास का अनुसरण सहज साध्य नहीं, क्योंकि प्रत्येक ज्ञान के विषय की तरह रामायण का आदि उत्स भी अनजान गुफा में निहित है। अतएव इतिहासकारों में भी इस विषय में निसंशय मतैक्य प्रतिष्ठा की संभावना नहीं दिखाई पड़ती है। तथापि यह बात थी स्वीकार करनी होगी कि रामायण कथा के विलीयमान आदि रूप में भारत-इतिहास का जो अस्पष्ट आभास पाया जाता है

उसका मूल्य भी कम नहीं है । रामायण कथा के आदि-उत्स के संधान के उपलक्ष्य में भारत इतिहास के धूप-छाँव युग का जितना परिचय पाया जाता है, इस स्थल पर उसके मूल तथ्यों का थोड़ा आभास देने की चेष्टा करूँगा ।

रामायण कथा के विवर्तन में भारतवर्ष के समाज व संस्कृति का इतिहास किस रूप में प्रकट हुआ है, रवीन्द्रनाथ ने 'साहित्य सृष्टि' (नंगदर्शन, १३१४ आषाढ़) व 'भारतवर्ष के इतिहास की धारा' (प्रवासी, १३१९ वैशाख) नामक दोनों प्रबंध[१] में उसका कुछ परिचय देने की चेष्टा की हैं । पाँच वर्ष के अंतराल में रचित इन दोनों प्रबंधों में रवीन्द्रनाथ के मत में कुछ परिवर्तन देखा जाता है । इसके बावजूद इन दोनों प्रबंधों में उनके विचारों की संगति विशेष रूप से लक्षित होती है । इस स्थान पर उनके मूल वक्तव्य का संक्षिप्त परिचय देने से ही हमारा उद्देश्य सिद्ध होगा ।

रवीन्द्रनाथ ने कहा है—

"रामायण रचित होने के पूर्व देश में रामचन्द्र के संबंध में.....एक जनश्रुति सन्देहातीत रूप से प्रचलित थी ।.....रामचरित-संबंध में जो-समस्त आदिम पुराण-कथा देश के जनसाधारण में प्रचलित थी । अब उनको ढूँढ़कर भी नहीं पाया जा सकता । किन्तु उनके बीच से ही रामायण की एक पूर्व सूचना देशभर में व्याप्त थी इसमें कोई सन्देह नहीं ।"

—'साहित्य सृष्टि' (१९०७) साहित्य

इसके अतिरिक्त जनश्रुति की राम कहानी परवर्ती कालीन वाल्मीकि-वर्णित रामकहानी से अनेकांश में पृथक् थी इसमें सन्देह नहीं है । दृष्टान्त स्वरूप से रवीन्द्रनाथ की बात का अनुसरण करके ही कहा जा सकता है रामचंद्र जो 'पितृ सत्य पालन के लिए वन में गए थे एवं उनकी पत्नी-हरणकारी का विनाश करके पत्नी का उद्धार किया था इसमें उनके चरित्र की महत्ता प्रमाणित अवश्य होती है'

१. 'साहित्य सृष्टि' प्रबंध 'साहित्य' ग्रंथ के अंतर्गत हैं । 'भारतवर्ष के इतिहास की धारा' को पहले 'परिचय' तत्पश्चात् 'समाज' व सबसे अंत में 'इतिहास ग्रंथ में स्थान मिला । परवर्ती काल में इसका अंग्रेजी संस्करण' A Vision of India History' भी Visva Bhrati Quaterly पत्रिका (१९२३) में प्रकाशित हुआ । यह प्रबंध बाद में पुस्तिका रूप में भी प्रकाशित हुआ (१९५१)

किन्तु इन दोनों में कोई भी वास्तविक घटना नहीं है, अवश्य ही परवर्ती कालीन कपोल-कथा या कवि-कल्पना-मात्र हैं।

फिर रवीन्द्रनाथ के अनुसार रामायण कहानी की मूल घटना तब क्या हैं? उनके अनुसार राम कथा के मूल में प्राचीन आर्य इतिहास की तीन बृहत् विप्लवात्मक घटनाओं की प्रेरणा है; परवर्ती काल में समाज मन के विवर्तन के कारण नए २ जीवनादर्श व उनके अनुकूल कल्पना के प्रभाव से रामायण की मूल कहानी का बहुलांश में रूपांतर होने पर भी उसके कुछ-कुछ आभास अब भी अवशिष्ट हैं। उक्त तीन बृहत् घटनाएँ यह हैं—

पहला, आर्य प्रधानत: मृगया जीवी व गोधन परायण थे किन्तु आर्यों के राज्य विस्तार व प्रभाव विस्तार के साथ-साथ क्षत्रिय राजा गण भी कालांतर में कृषि निर्भरशील हुए, कृषि संपदा ही उनका प्रधान संपद् था। इस राज्य विस्तार व कृषि विस्तार के कारण ही उनके साथ राक्षस जातीय अनार्यों का विरोध घटित हुआ, कृषि विस्तार के उपलक्ष्य में आर्यों अनार्यों का विरोध ही रामायण की अन्यतम मूल कथा है। रामायण कथा के रूपकार्थ का वास्तविक तात्पर्य भी नहीं है। सीता, राम व लक्ष्मण इस कृषि सभ्यता के प्रतीक हैं। और विश्वामित्र व जनक इसके प्रवर्तक व सहायक हैं। विश्वामित्र के प्रवर्तन के कारण ही राम सीता मिलन, अहल्या उद्धार व राक्षस संघर्ष का सूत्रपात होता है, यह कथा ही रामायण कहानी में स्पष्ट रूप से उभरती है। और कृषि विस्तार व राक्षस शक्ति का निरोध ही राजा जनक के जीवन का व्रत था, यह बात भी रामायण में प्रच्छन्न नहीं है। प्राचीन महापुरुषों में जनक आर्य सभ्यता के एक धुरन्धर हैं, नाना जनश्रुति से यह बात समर्थित होती है। भारतवर्ष में कृषि विस्तार में भी वे एक उत्साही पुरुष थे। वे स्वहस्त से हल चलाते थे, उनकी कन्या का नाम भी सीता अर्थात् हलरेखा है।

"कृषि की इस हल से ही आर्य लोग भारतवर्ष की मिट्टी को क्रमश: अपना बना ले रहे थे। इस हल से ही अरण्य लुप्त होकर कृषि क्षेत्र विस्तृत हो रहा था, राक्षस गण इस विस्तार के अंतराय स्वरूप थे।"

—"साहित्य सृष्टि" साहित्य,

विश्वामित्र व जनक की प्रेरणा से ही रामचन्द्र सीता को प्राप्त करते हैं अर्थात् कृषि विस्तार का व्रत ग्रहण करते हैं, कृषिव्रती रामचन्द्र के जीवन के प्रधान दो कृतित्त्व-अहल्या उद्धार व सीता उद्धार है । एक ओर उन्होंने हल चालन के अयोग्य अनुर्वर भूमि को शस्य-श्यामल व रमणीय बनाया तो दूसरी ओर उन्होंने राक्षस शक्तियों को निरस्त कर शस्य शालिनी कृषि भूमि की उनके हाथों से रक्षा की ।

रामायण की द्वितीय बृहत् घटना है कृषि विस्तार के शत्रु राक्षस शक्ति का पराभव साधन, ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय प्राय: समग्र भारतवर्ष ही राक्षसों के अधिकार में था । महाभारत में देखा जा सकता है कि हस्तिनापुर से थोड़ी दूर एकचक्रा नामक स्थान में राक्षसों के संग पाण्डवों का साक्षात् होता है एवं राक्षसों के संग आर्यों के वैवाहिक संबंध स्थापन में भी बाधा नहीं थी, किन्तु आर्य-राज्य विस्तार के साथ-साथ राक्षस पूर्व व दक्षिण से हट जाने को बाध्य हुए । राजा जनक के समय में आर्य शक्ति पूर्व भारत में विदेह अर्थात् उत्तर बिहार तक विस्तृत हुआ किंतु उसके सन्निकट में ही राक्षसों का अधिष्ठान था, पहले रामचन्द्र इस पूर्वभारत के राक्षस प्रभाव को नष्ट करने में प्रवृत्त हुए । ताड़का-निधन व अहल्या उद्धार पूर्व भारत की ही घटना है । हर-धनु भंग कर सीता-प्राप्ति भी वहीं हुई हैं । विश्वामित्र व जनक रामचंद्र को कृषि विस्तार व राक्षस निरसन में इस पूर्व भारत में ही उत्साहित करते हैं ।

"विश्वामित्र रामचन्द्र को अनार्य पराभव व्रत में दीक्षित कर उन्हें जनक के परीक्षा स्थल में उपस्थित करते हैं । वहीं रामचन्द्र धनुष तोड़ अपने व्रत ग्रहण के श्रेष्ठ अधिकारी रूप में अपना परिचय देते हैं ।"

—"साहित्य सृष्टि", साहित्य

तत्पश्चात् रामचन्द्र सीता को दक्षिण भारत ले जाते हैं । वहाँ राक्षसों का अप्रतिहत प्रभाव है किन्तु रामचन्द्र अमित पराक्रम से राक्षसराज दशानन को पराभूत कर उनके हाथों से सीता का उद्धार करते हैं । अर्थात् आर्य पहले पूर्व भारत में तथा बाद में दक्षिण भारत में अनार्य शक्ति को प्रतिहत कर कृषि निर्भर नव सभ्यता का विस्तार करते हैं ।

पूर्व व दक्षिण भारत में यह जो आर्य-अनार्य का संघात हुआ, उसके मूल में केवल सभ्यता ही नहीं, धर्म का भी विरोध था। राक्षस शिवोपासक थे, यह बात हम सभी जानते हैं। शिव धनुष इस शैव-शक्ति का ही प्रतीक है। कृषि-सभ्यता के परिपोषक व राक्षस प्रभाव के विरोधी राजा जनक स्वभावत: ही शिवधनुष तोड़ सकें अर्थात् शिवोपासक राक्षसों के वीर्य को निरस्त कर सकें ऐसे शक्तिधर पुरुष की अपेक्षा में थे। अंत में क्षत्रिय ऋषि विश्वामित्र के मध्यस्थता से वे अमित वीर्य रामचन्द्र की सहायता प्राप्त करते हैं।

आर्य-अनार्य के इस धर्म-विरोध स्वरूप को और भी कुछ विशद रूप से समझना आवश्यक है। शिवोपासक राक्षस प्राय: आर्य ऋषियों के यज्ञानुष्ठान में विघ्न उत्पन्न करते थे, यह बात आज तक अविस्मरणीय रह गई है। केवल यही नहीं, राक्षसों के देवता शिव ने स्वयं भी दलबल लेकर दक्ष राजा के यज्ञ को नष्ट किया था, यह बात कौन नहीं जानता? इसके अतिरिक्त, राक्षसराज रावण जो अपनी स्पर्धा से आर्य देवताओं को अभिभूतकर अपने दासत्व में नियुक्त करता है, इसका तात्पर्य भी यह है कि राक्षस केवल अपनी सभ्यता को ही नहीं वरन् अपने धर्म को भी आर्य धर्म पर विजयी घोषित करना चाहते हैं। रावण पुत्र का 'इन्द्रजीत' नाम भी इसी अपरिमित स्पर्धा का ही परिचायक है। इस प्रकार राक्षस-शक्ति को पराभूत करना आर्यों के लिए एक कठिन समस्या के रूप में दिखाई पड़ी। इसीलिए रवीन्द्रनाथ कहते हैं—

"ऐसी अवस्था में उस शिव के शिवधनुष को कौन तोड़ेगा, एक दिन आर्य समाज में यहीं प्रश्न उठ खड़ा हुआ था।.....विश्वामित्र रामचन्द्र को उस शिव-धनुष भंग करने के दु:साध्य की परीक्षा में ले गए थे।

—'भारतवर्ष के इतिहास की धारा' (१९१२,) इतिहास

अहल्या उद्धार व सीता उद्धार की तरह शिव धनुष भंग भी रामचंद्र की एक श्रेष्ठ कीर्ति है अर्थात् आर्य-अनार्यों के द्वन्द्व के परिणाम में आर्य ही विजयी हुए थे। वे अपनी कृषि सभ्यता को अनार्य शक्ति के हाथ से बचाने एवं आर्य-धर्म को अनार्य शैव-धर्म पर विजयी बनाने में समर्थ हुए थे।

इस प्रसंग में यह बात भी कहना उचित है कि अवस्था व काल परिवर्तन के कारण आर्य-अनार्यों का यह विरोध जब एक समय विशेष पर मिट गया तब केवल इन दोनों सभ्यताओं का समन्वय संघटित ही नहीं हुआ वरन् दोनों धर्मों का भी समन्वय घटित हुआ। तब किसी समय के यज्ञ विरोधी शिव यज्ञेश्वर-रूप में स्वीकृत व महेश्वर रूप में पूजित हुए। और कृषि-सम्पदा की अन्यतमा देवी अन्नपूर्णा उनकी गृहिणी रूप में स्वीकार्य हुई। यह समन्वय प्रवणता ही भारत-संस्कृति का सर्वप्रधान वैशिष्ट्य है।

आदि-रामायण कहानी की तृतीय वृहत् घटना ब्राह्मण क्षत्रियों का विरोध व क्षत्रियों का जय लाभ है। पहले कहा जा चुका है कि कृषि विस्तार में क्षत्रियों का प्रधानत: आग्रह था क्योंकि क्षत्रियों का प्रभुत्व प्रधानत: कृषि लब्ध सम्पदा व शक्ति पर निर्भरशील थी। कृषि विस्तार में ब्राह्मणों का विशेष आग्रह नहीं था, वे साधारणत: गोसम्पदा लेकर ही संतुष्ट रहते थे। अतएव कृषि सम्पदा लेकर अनार्यों के साथ आर्यों का जो विरोध था, वह वस्तुत: क्षत्रियों का ही विरोध था। क्योंकि राक्षसों के प्रभाव से क्षत्रियों का स्वार्थ ही विघ्नित होता था।

धर्म के क्षेत्र में भी ब्राह्मण-क्षत्रिय का विरोध देखा गया था। ब्राह्मणों का विशेष आग्रह यज्ञानुष्ठानों के प्रति था किन्तु एक श्रेणी के क्षत्रिय कालान्तर में यज्ञानुष्ठान के प्रति अनाग्रही ही नहीं, यज्ञ विरोधी भी हो गए थे। इसका कारण उपनिषद् में ही नहीं गीता में भी है। ज्ञातव्य है कि उपनिषद् में 'क्रिया विशेष बहुल' यज्ञानुष्ठान को कोई महत्त्व नहीं दिया गया है, वस्तुत: उपनिषद् में सर्वाधिक गुरुत्व ब्रह्म विद्या को दिया गया है। इसीलिए ऋक्, साम, यजु: आदि ब्राह्मण-सेवित विद्या को 'अपरा विद्या' कहा गया है और क्षत्रिय सेवित ब्रह्म विद्या को 'परा विद्या' व 'राज विद्या' कहा गया है। वस्तुत: उपनिषद् की विद्या मुख्यत: क्षत्रियों की ही विद्या है। उपनिषद् युग के अन्यतम श्रेष्ठ राजा जनक औपनिषदिक ब्रह्म विद्या के पृष्ठ पोषकता के लिए ही विशेष रूप से विख्यात हुए, गीता में भी देखा जा सकता है कि क्षत्रिय धर्मनायक श्रीकृष्ण क्षत्रिय वीर अर्जुन को कहते हैं "त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन" (२/४५) अर्थात् वेद समूह त्रैगुण्य विषयक हैं, तुम निस्त्रैगुण्य बनो—क्योंकि वेदों का यागयज्ञ आदि क्रिया काण्ड मनुष्यों को केवल भोगसक्ति

व मूढ़ता की ओर चालित करते हैं। ब्राह्मण-क्षत्रिय का यह स्वार्थ भेद व धर्मगत मत विरोध क्रमशः गुरुतर आकार ग्रहण करता गया, रवीन्द्रनाथ कहते हैं—

"इस तरह समाज में जो भिन्न आदर्शों की उत्पत्ति हुई, उस आदर्श भेद के मूर्तिपरिग्रह स्वरूप (परिणामतः) में हम दो देवताओं को पाते हैं, प्राचीन वैदिक मंत्र तंत्र क्रियाकाण्ड के देवता ब्रह्मा एवं नव्यदल के देवता विष्णु हैं।"

—भारतवर्ष के इतिहास की धारा,' इतिहास

अर्थात् 'वेदवादरत' क्रियाकाण्ड परायण ब्राह्मणों के देवता ब्रह्मा और राज्य पालनरत यज्ञविरोधी क्षत्रियदल के देवता विष्णु हुए, ब्रह्मा चतुर्मुख से चतुर्वेद उच्चारित करते हैं, इसी लिए वे वेद परायण ब्राह्मणों के योग्य देवता हैं और विष्णु शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी चार हाथों से विश्वजगत् की रक्षा व पालन करते हैं इसलिए वे क्षत्रियों के योग्य उपास्य देवता हैं।

ब्राह्मण क्षत्रियों का यह स्वार्थगत व धर्म गत भेद एक समय पर जीवन-मरण संग्राम का रूप धारण कर चुका था इसके कुछ प्रमाण अब भी प्राप्त होते हैं, इस प्रसंग में रवीन्द्रनाथ कहते हैं—

'वृत्तिगत भेद से शुरू होकर ब्राह्मण-क्षत्रिय के बीच यह चित्तगत भेद एक ऐसी सीमा पर आ खड़ा हुआ जब विच्छेद की इस विदारण रेखा से सामाजिक विप्लव का अग्न्योद्गार शुरू हुआ, वशिष्ठ विश्वामित्र की कहानी में भी इस विप्लव का इतिहास निबद्ध है।

इस विप्लव के इतिहास में ब्राह्मण पक्ष वशिष्ठ नाम को व क्षत्रिय पक्ष विश्वामित्र नाम का आश्रय लेते हैं।'

—'भारतवर्ष के इतिहास की धारा', इतिहास

ऐसा प्रतीत होता है कि ब्राह्मण क्षत्रियों का यह संग्राम दीर्घ स्थायी हुआ था। सामाजिक विप्लव कभी भी अल्पकाल में नहीं मिटता है। इस विप्लव के इतिहास में एक पक्ष में वशिष्ठ, भृगु, जमदग्नि, परशुराम, द्रोणाचार्य एवं विपक्ष में विश्वामित्र, कार्तवीर्य अर्जुन रामचन्द्र, श्रीकृष्ण आदि नाम स्मरणीय हैं। हमारी पुराण कथाओं में इनके संग्राम कहानी नाना उपलक्ष्य पर सविस्तार वर्णित है। इन

कहानियों से प्रतीत होता है कि ब्राह्मण क्षत्रिय का यह विरोध व संग्राम जनित महाविप्लव दीर्घकाल से ही हमारे समाज को मथित व विपर्यस्त कर रहा था।

पहले ही कहा जा चुका है कि इस समाज-विप्लव के मूल में केवल वृत्तिगत स्वार्थ भेद ही नहीं, धर्मगत मतभेद भी सक्रिय था, ब्राह्मणों का लक्ष्य था वेद विहित यज्ञ-देवता ब्रह्मा का प्राधान्य प्रतिष्ठित करना किन्तु क्षत्रिय वेद व यज्ञ देवता ब्रह्मा के प्राधान्य को न मान विश्व के पालनकर्त्ता-विष्णु को मानते थे। इस प्रसंग में रवीन्द्रनाथ की एक उक्ति स्मरणीय है—

"विष्णु के वक्ष पर ब्राह्मण भृगु ने पदाघात किया था, इस कहानी में एक विरोध का इतिहास समाहित है। यह भृगु यज्ञकर्ता व यज्ञ फलभागियों के आदर्श रूप में वेदों में वर्णित है। भारतवर्ष में पूजा आसन पर ब्रह्मा के स्थान को संकीर्ण बनाकर विष्णु ही जब उस पर अधिकार करते हैं—-तब उस संधिक्षण में एक भारी तूफान उठ खड़ा हुआ था, यह अनिवार्य भी था, इस विचित्र क्रियाकाण्ड का अधिकार जिनके हाथों में था एवं वह अधिकार लेकर समाज में जो विशेष आदर पाते थे, वह सहज ही उसके घेरे को तोड़ने नहीं देते हैं।"

—"भारतवर्ष के इतिहास की धारा" इतिहास

पुराण कथा के अनुसार ब्राह्मण-क्षत्रियों का यह दीर्घसूत्री विरोध कई पीढ़ियों तक चला, इस विरोध की कहानी में ब्राह्मण पक्ष में भृगुवंश व वशिष्ठ वंश, यह दोनों वंश ही प्राधान्य पाते हैं। भृगुवंशियों में ऊर्व जमदग्नि व परशुराम का नाम एवं वशिष्ठ वंशियों में शक्ति व पराशर का नाम विशेष रूप से स्मरणीय है और क्षत्रिय पक्ष में विश्वामित्र कल्माषपाद, कार्तवीर्य अर्जुन आदि नाम विख्यात है। दाशरथि राम भी वस्तुतः इस द्वितीय कोटि में ही आते थे; भृगुवंशिय परशुराम का दर्पहरण उनकी अन्यतम कीर्ति है। इस इतिहास का अधिक अनुसरण हमारे लिए निरर्थक है।

इस प्रसंग में यह बात भी स्मरणीय है। कि सभी क्षत्रिय ही ब्राह्मण विरोधी थे, यह बात नहीं है, ब्राह्मण पक्ष समर्थक क्षत्रियों का अभाव भी नहीं था, जो सब पुराण कहानी हमारे काल तक आ पहुँचे हैं उसमें भी इस बात का समर्थन पाया जाता है।

थोड़े ध्यान से देखने पर ही समझा जा सकता है कि कुरुक्षेत्र युद्ध के मूल में भी ब्राह्मणों का नेतृत्व लेकर क्षत्रियों में आत्मकलह था। एक पक्ष ब्राह्मण नायक द्रोण-कृप व अश्वथामा एवं उनके पक्षावलम्बी भीष्म कर्ण वे क्षत्रिय शत्रु भृगु कुलतिलक परशुराम के शिष्य थे व धृतराष्ट्रतनय गण थे। ब्राह्मण पक्षपाती व क्षत्रियद्वेषी जरासंध तथा शिशुपाल भी इनके समर्थक थे और विपक्ष में क्षत्रिय नायक श्रीकृष्ण एवं उनके अनुवर्ती द्रुपद-धृष्टद्युम्न व पाण्डवगण थे।

राम कथा के मूल में भी ब्राह्मण-क्षत्रिय का विरोध तथा इस विषय को लेकर क्षत्रियों का गृह-विवाद, इसका आभास अब भी रामायण काव्य में है। इस प्रसंग में रवीन्द्रनाथ की उक्ति अति सुस्पष्ट है—

"रामायण काल में रामचन्द्र ने नूतन दल का पक्ष लिया था, यह स्पष्ट ही देखा जाता है। वशिष्ठ का सनातन धर्म ही राम का कुल-धर्म था, वशिष्ठ वंश ही उनका चिरपुरातन पुरोहित वंश था तथापि अल्पायु में ही रामचन्द्र उस वशिष्ठ के विरुद्ध पक्षीय विश्वामित्र का अनुसरण करते हैं। वस्तुत: विश्वामित्र ही राम को उसके पैतृक अधिकार से छीन लेते हैं। राम जो पंथ लेते हैं उसमें दशरथ की सम्मति नहीं थी किन्तु विश्वामित्र के प्रबल प्रभाव के सामने उनकी आपत्ति टिक न सकी।....

अकस्मात् युवराज्य अभिषेक में बाधा उत्पन्न हो रामचन्द्र निर्वासित हुए, इस घटना में संभवत: तब की दो प्रबल पक्षों का विरोध सूचित होता है। राम के विरुद्ध में एक दल था जो निस्सन्देह ही अत्यन्त प्रबल था एवं स्वाभाविक रूप से अन्त:पुर की महीषियों पर उनका विशेष प्रभाव था। वृद्ध दशरथ इसकी उपेक्षा नहीं कर पाए, इसलिए अत्यन्त अनिच्छा के बावजूद अपने प्रियतम वीर पुत्र को निर्वासन में भेजने को बाध्य हुए थे।"

—'भारतवर्ष के इतिहास की धारा,' इतिहास

राम निर्वासन कथा का इससे अधिक युक्ति संगत व इतिहास संगत व्याख्या और क्या हो सकती है, मालूम नहीं। ऐसा प्रतीत होता है कि रवीन्द्रनाथ की उक्ति में थोड़ी सी दुर्बलता व स्वविरोधिता है। दशरथ अपने प्रिय पुत्र रामचन्द्र को 'अत्यन्त अनिच्छा पूर्वक' भी निर्वासित करने को 'बाध्य हुए थे', यह बात युक्ति संगत नहीं प्रतीत होती है। रामचंद्र ने अल्पायु में ही पिता की असम्मति पर भी पितृ गुरु वशिष्ठ का पक्ष त्याग कर वशिष्ठ विरोधी विश्वमित्र का पक्ष ग्रहण किया

था एवं विश्वामित्र की सहायता से अन्यतम क्षत्रिय नायक राजा जनक का आश्रय ग्रहण किया था, इसके अतिरिक्त, उस समय 'क्षत्रिय दल के विरोध में ब्राह्मणों का जो विद्वेष प्रबल हो रहा था उसको भी ये क्षत्र ऋषि विश्वामित्र के शिष्य ने अपने भुजबल से परास्त किया था; कहना न होगा कि क्षत्रियों के विरुद्ध में ब्राह्मणों का यह जो प्रबल विद्वेष था उसी के प्रतीक रूप में रामायण में परशुराम की अवतारणा की गई थी और रामचन्द्र का परशुराम की शक्ति को परास्त करने का तात्पर्य यह है कि क्षत्रिय शक्ति के प्रतिभू स्वरूप रामचन्द्र ने ब्राह्मण शक्ति को निरस्त्र व पर्युदस्त किया था। इन सब कार्यकलापों के कारण अर्थात् विश्वामित्र का पक्ष ग्रहण तथा ब्राह्मण शक्ति की आनुगत्य वर्णन के कारण रामचन्द्र दशरथ व वशिष्ठ पक्ष के विराग भाजन हुए थे, इसको मानना युक्ति संगत है। इसी के परिणाम स्वरूप पितृराज्य से वे निर्वासित हुए, यह द्वन्द्व अन्तःपुर में भी विस्तृत होकर राजमहीषियों तथा राजपुत्रों को दो पक्षों में विभक्त करता है, यह अनुमान करना असंगत नहीं है। कैकेयी कथा व भरत राज्यप्राप्ति के मूल में भी यही गृह द्वन्द्व है। अन्यथा, राज्य प्राप्ति के लोभ से भरत ससैन्य राम-लक्ष्मण को वध करने को अग्रसर हो सकते हैं ऐसी आशंका लक्ष्मण के मन में कभी भी दिखाई नहीं दे सकती थी, उनके मुख से

'हनिष्ये पितरः वृद्धः कैकेय्यासक्तमानसम्'

अथवा

'भरतस्य वधे दोषः नाहं पश्यामि राघव'

इत्यादि उक्ति कभी भी नहीं निकल सकती थी इसलिए दशरथ रामचन्द्र को अनिच्छा के बावजूद भी निर्वासन में भेजने को बाध्य हुए, यह बात स्वीकार्य नहीं प्रतीत होती है। पिता की अप्रसन्नता ही राम निर्वासन का मूल कारण है। दशरथ को इस कार्य में कैकेयी व भरत का समर्थन व सहायता मिली थी।

"परवर्ती काल में इस काव्य में जब जातीय समाज के बृहत् इतिहास की स्मृति को किसी एक राजवंश की पारिवारिक कथा के रूप में प्रस्तुत किया गया तभी दुर्बल चित्त वृद्ध राजा के अद्भुत स्त्रैणता को ही राम के वनवास का कारण कहा गया।"

—"भारतवर्ष के इतिहास की धारा" इतिहास

रवीन्द्रनाथ के इस अभिमत को सर्वत: स्वीकार्य मानता हूँ, वस्तुत: रामायण-काव्य पहले ब्राह्मण-क्षत्रिय-विरोध में क्षत्रिय विजय का काव्य था एवं इस विरोध के उपलक्ष्य में दशरथ के गृह द्वन्द्व में रामचन्द्र की राज्यच्युति एवं पुन: प्राप्ति का काव्य था, किन्तु परवर्ती काल में जन ब्राह्मण क्षत्रिय का विरोध मिट गया एवं समाज में क्षत्रियों की जगह ब्राह्मणों का आधिपत्य प्रतिष्ठित हुआ तब मूल पंचकाण्ड रामायण (आदि व उत्तर को छोड़कर) में उत्तरकाण्ड के नाम से षष्ठकाण्ड संयुक्त हुआ, केवल यही नहीं ब्राह्मण शासित समाज के अनुकूल रामायण के नूतन संस्करण भी रचित हुए एवं भ्रातृ द्वन्द्व की कथा को ही भ्रातृ प्रेम के आदर्श रूप में प्रस्तुत किया गया, इस समय क्षत्रिय पूजित विष्णु को ब्राह्मणों ने स्वीकार कर लिया एवं रामचन्द्र को विष्णु के अवतार रूप में स्वीकार कर लेने में द्विधा नहीं की, किन्तु साथ ही साथ उन्हें ब्राह्मण तथा ब्राह्मण्य शास्त्र के अनुसारी रूप में चित्रित किया गया । इसलिए देखते हैं कि जो रामचन्द्र एक समय गुहक चांडाल के परम मित्र थे वे ही उत्तर काण्ड में शूद्र शंबुक के निधन कर्ता रूप में दिखाई देते हैं । इस प्रसंग में रवीन्द्रनाथ का अभिमत विशेष रूप से ही प्रणिधान योग्य है—

'क्षत्रिय रामचन्द्र ने एक दिन गुहक चाण्डाल को अपने परम मित्र रूप में ग्रहण किया था; यह जनश्रुति आज तक उनके आश्चर्यजनक उदारता की परिचायिका रूप में जानी जाती है । परवर्ती युग के समाज ने उत्तरकाण्ड में उनके चरित्र के इस महात्म्य का विलोप करना चाहा; शूद्र तपस्वी को उन्होंने वध दण्ड दिया, यह अपवाद रामचंद्र के चरित्र पर आरोपित कर परवर्त्ती समाज रक्षकों के दल ने[१] रामचरित के दृष्टान्त को अपने पक्ष में लाने की चेष्टा की, जिस सीता की रामचन्द्र ने सुख-दु:ख में रक्षा की थी व प्राणपण से शत्रुहस्त से उद्धार किया, समाज के प्रति कर्तव्य के अनुरोध से उनको भी वे बिना किसी अपराध के परित्याग करने को बाध्य हुए, उत्तरकाण्ड की इस कथा सृष्टि के द्वारा स्पष्ट समझा जा सकता है कि आर्यजाति के वीर श्रेष्ठ आदर्श चरित्र रूप में पूज्य रामचंद्र की जीवनी को एक समय पर सामाजिक आचार की रक्षा के अनुकूल करके वर्णन करने की विशेष चेष्टा ऊपजी थी ।

---

१. अर्थात् ब्राह्मण दल

रामचरित्र में जो समाज विप्लव का इतिहास था, परवर्ती काल में उसके चिह्नों को यथासंभव मिटाकर उसको नव्यकाल के सामाजिक आदर्श के अनुकूल बनाया गया। उसी समय राम के चरित्र को गृहधर्म व समाज धर्म के आश्रय रूप में प्रचार करने की चेष्टा दिखाई दी एवं जो रामचंद्र एक समय पर अपने स्वजाति को विद्वेष के संकोच से प्रेम के प्रसारण की तरफ ले गए थे एवं उस नीति के द्वारा एक विषम समस्या का समाधान कर समस्त जाति के पास चिरकाल के लिए वरणीय हो गए थे यह बात धूमिल हो गई एवं क्रमशः यह प्रचलित हुआ कि वे शास्त्रानुमोदित गृहस्थ के आश्रय व लोकानुमोदित आचार के रक्षक हैं, इसमें अद्भुत बात यह है कि एक समय में जिस रामचन्द्र ने धर्म नीति व कृषि विद्या को नूतन पथ पर चालित किया था, परवर्ती काल में उन्हीं के चरित्र को समाज के पुरातन विधि बंधन के अनुकूल कर व्यवहृत किया गया। एक दिन जिन्होंने समाज की गति के पक्ष में वीर्य प्रकाश किया था और एक दिन समाज में उसी को स्थिति के पक्ष में वीर कहकर प्रचारित किया गया।'

—भारतवर्ष के इतिहास की धारा;इतिहास

यह जो उत्तरकाल व नव्यकाल की बात कही गयी है; यह कौन-सा काल है ? यह बात मौर्य सम्राट् प्रियदर्शी अशोक (२७२-२३२ ई. पूर्व.) का परवर्ती काल था, ऐसा मानने के कारण हैं। अन्यत्र इस विषय पर कुछ २ आलोचना की गई है, यहाँ पुनरुक्ति निरर्थक है। यहाँ इतना कहना ही यथेष्ट है कि सम्राट् अशोक के प्रभाव से जब देश में वेद व ब्राह्मण विरोधी बौद्ध धर्म प्रबल हो उठा था तब ब्राह्मणों ने आत्मरक्षा के प्रयोजन से एक ओर क्षत्रिय पूजित विष्णु को स्वीकार कर विष्णु भक्त क्षत्रियों को अपनी ओर कर लिया एवं दूसरी ओर क्षत्रिय काव्य रामायण को ब्राह्मण धर्म व समाज के अनुकूल रूप में संस्कार कर एक कल्पित आदर्श रामराज्य को बौद्ध समाज में स्वीकृत अशोक के आदर्श धर्मराज्य के प्रतिद्वन्द्वी रूप में उपस्थित किया, उत्तरकाण्ड समेत यह नूतन रामायण ही आधुनिक काल में हमारे समीप पहुँचा है। उत्तरकालीन रामायण के इस नूतन संस्करण में प्राचीन काल के ब्राह्मण क्षत्रिय के विरोधगत समाज विप्लव एवं इस कारण राजा दशरथ के परिवार में निदारुण भ्रातृ-कलह के चिह्नों को पूर्णरूप से मिटा देने की चेष्टा की गई थी किन्तु इसके बावजूद भी रामायण कथा के बीच-बीच में उक्त विप्लव व कलह के जो

समस्त आभास रह गए हैं, प्राचीन भारतीय धर्म व समाज के इतिहास में उनका मूल्य कम नहीं ।

स्पष्ट है कि भारत इतिहास के अन्यतम उत्स के रूप में भी रामायण के आलोचना की यथेष्ट उपयोगिता है । वस्तुतः रामायण के रूपकार्थ निर्णय की जो प्रयोजनीयता है, भारतीय धर्म व समाज के ऐतिहासिक उपादान रूप में रामायण विश्लेषण की प्रयोजनीयता उससे कुछ भी कम नहीं, मौर्य पूर्व काल से मौर्योत्तर काल तक धर्म व समाज विवर्तन का जो विपुल इतिहास है, उसके एक बृहत् अंश का ही संधान रामायण काव्य में पाया जाता है । वस्तुतः राम कथा के विवर्तन में अनेक स्तर देखे जा सकते हैं एवं इसके प्रत्येक स्तर में ही भारतीय धर्म व समाज विवर्तन के विभिन्न पर्यायों के चिह्न आविष्कृत होते हैं, इसमें सन्देह नहीं और इस विवर्तन के इतिहास में भारतीय संस्कृति का जो तात्पर्य निहित है, आधुनिक काल में हमारी सत्य दृष्टि प्राप्ति के पक्ष में उसका महत्त्व कम नहीं ।

(५)

इसके बावजूद भी यह स्वीकार करना होगा कि रामायण की प्रधान सार्थकता उसके रूपकार्थ निर्णय में नहीं, उसके ऐतिहासिक तथ्य निष्कर्षण में भी नहीं है । रामायण की वास्तविक सार्थकता उसकी मानवीयता तथा काव्य रस में निहित है । मनुष्य के स्नेह-प्रेम स्वार्थ संघर्ष विरह-मिलन सुख-दुःख आदि ही इस काव्य के वास्तविक उपजीव्य हैं । इसी मानवीयता के बल पर रामायण ने भारतवर्ष को चिरकाल के लिए जीत लिया एवं भारतवर्ष में परवर्ती कोई भी काव्य इस आदिकाव्य के गुण का अतिक्रमण नहीं कर सका ।

इस दृष्टि से रामायण के संग महाभारत की तुलना करना आवश्यक है । एक ओर से देखा जाए तो रामायण से महाभारत में ही मानव चित्तवृत्तियों का प्रकाश वैचित्र्य अधिक है, उसमें राक्षस आदि अमानुषों का स्थान अतिसामान्य है, दूसरी ओर, रामायण में राक्षस-वानर, इत्यादि ने जो अतिप्राधान्य प्राप्त किया है इससे बहुतों का विचार है कि इस काव्य का मानवीय रस अनेकांश में विघ्नित हुआ है । किन्तु दूसरी ओर से विचार करने से देखा जा सकता है कि रामायण के चरित्रों ने भारतवर्ष के चित्र को जिस गहराई से स्पर्श किया है महाभारत के चरित्र वह न कर

सकें। युधिष्ठिर धर्मराज थे किन्तु उनका राज्य आदर्श नहीं; रामराज्य ही आदर्श राज्य है। आज भी राम-लक्ष्मण का सौभ्रातृ, रामसीता का दाम्पत्य जिस आदर्श स्थान का अधिकारी हैं, महाभारत के मुख्य चरित्रों से उनकी तुलना नहीं। राम की पितृभक्ति, लक्ष्मण की भ्रातृभक्ति, सीता की पतिभक्ति ने भारतवर्ष के जातीय मन को जिस आदर्श की प्रेरणा दी है महाभारत के चरित्रों ने वह नहीं दिया, वस्तुत: पंचपाण्डव का कोई भी चरित्र आदर्श रूप में अनुसरण करने योग्य नहीं है। एक मात्र अर्जुन का वीरत्व अनेकांश में आदर्श रूप में गण्य होता है किन्तु वह भी राम के वीरत्व से अधिक नहीं, वस्तुत: थोड़ा सोचने से ही स्पष्ट हो जाता है कि भारतवर्ष के जातीय चरित्र गठन में महाभारत से रामायण का प्रत्यक्ष प्रभाव ही अधिक है।

महाभारत में भारतवर्ष प्रतिफलित हुआ है किन्तु रामायण के द्वारा भारतवर्ष युग पथ में प्रकाशित व प्रभावित हुआ है, महाभारत ने भारतवर्ष के जातीय समाज व मन के इतिहास को धारण किया है किन्तु रामायण स्वयं में इतिहास न होकर भी हमारे इतिहास का युग युग से गठन करता एवं रूप देता रहा है। फलस्वरूप भारतवर्ष ने रामायण के आदर्श पर समय-समय पर गठित होकर रामायण को ही इतिहास बना दिया। महाभारत की तरह रामायण में भारतवर्ष का प्रतिफलन नहीं हुआ किन्तु रामायण में ही भारतवर्ष के मन का प्रतिफलन हुआ है। इस तरह इस आदिकाव्य ने श्रेष्ठ इतिहास की मर्यादा को प्राप्त किया इसलिए रवीन्द्रनाथ ने इसको हमारे चिरकाल के इतिहास रूप में वर्णित किया है।

हमारे जातीय मन पर रामायण का यह जो प्रभाव है, इसका परिचय हमारे जातीय साहित्य में मिलता है। महाभारत की मूल कहानी का अनुसरण व अवलम्बन करके बहुत कम काव्य ही रचित हुए; जो हुए हैं वे अपेक्षाकृत परवर्ती कालीन है एवं उनका प्रभाव भी अधिक नहीं, दूसरी ओर रामायण कितने रूप में अनुकृत अनुसृत व अनूदित हुआ उसकी सीमा नहीं, ईसा की प्रथम शताब्दी में ही हम देखते हैं कि महाकवि अश्वघोष ने रामायण के आदर्श पर 'बुद्ध चरित' काव्य की रचना की, इस काव्य को यदि बुद्धायन नाम से अभिहित किया जाए तो इसका स्वरूप यथार्थ रूप से प्रकाशित होगा, उनके परवर्ती कवियों ने रामायण को आदर्श रूप में स्वीकार न कर प्रत्यक्ष रूप से राम कथा का अवलम्बन कर काव्य-नाटकादि

की रचना की, इस प्रकार के राम काव्योंके द्वारा भारतीय साहित्य युग युग से अलंकृत हुआ है ।

इस प्रसंग में यह स्मरण रखना होगा कि रामायण ने ही युग युग से भारतीय चिन्ता व चरित्र को नियंत्रित व रूपदान किया ऐसा नहीं है अपितु भारतीय चिन्ता ने ही समय-समय पर स्वयं के प्रयोजनानुसार रामायण को नव-नव रूप से गठित किया है । इस तरह रामायण के संग भारत वर्ष की चित्तगत घनिष्ठता क्रमशः निविडतर हो उठी । राम काव्य के इस क्रम विवर्तन के बीच से ही भारतवर्ष के अन्तर की इतिहास-धारा प्रवाहित हो चली है । अन्य विवर्तन की तरह इस विवर्तन में भी एक ऐक्य अपरिवर्तित रूप में नित्य विराजित है । इस सूक्ष्म ऐक्य सूत्र ने ही भारतवर्ष के अतीत के साथ उसके वर्तमान को अविच्छेद रूप में बाँध रखा है, इस प्रकार रामायण काव्य भारतवर्ष के यथार्थ इतिहास में परिणत हुआ, यह तथ्यगत इतिहास नहीं, सत्यगत इतिहास है । केवल तथ्यगत होने से रामायण का प्रभाव कभी भी इतना गंभीर नहीं हो सकता था क्योंकि तथ्य बाह्य वस्तु है, जाति की अंतरात्मा को स्पर्श करने की क्षमता उसमें नहीं एवं अपनी समय की सीमा का अतिक्रम कर नित्यकाल पर अधिकार कर पाना संभव नहीं, इसलिए रवीन्द्रनाथ ने नारद ऋषि के मुख से वाल्मीकि कवि को सम्बोधित कर कहा है—

सेइ सत्य, या रचिबे तुमि—
घटे या ता सब सत्य नहे । कवि, तव मनोभूमि
रामेर जन्मस्थान, अयोध्यार चेये सत्य जेनो ।

—'भाषा ओ छंद', काहिनी (१९००)

"वही सत्य, जो रचोगे तुम—घटित होता जो वह सब सत्य नहीं, कवि तुम्हारी मनोभूमि राम का जन्म स्थान है, अयोध्या से सत्य जानो ।" यह सत्य की धारा सुदूर प्राचीन काल से वर्तमान काल तक अविच्छिन रूप से प्रवाहित होती आ रही है एवं पूतसलिला गंगा के प्रवाह की तरह भारतीय चित्त भूमि को चिरश्यामल बना रही है । भारतवर्ष के इतिहास के एक एक युग का यथार्थ परिचय पाने के लिए तत्कालीन रामकाव्य का आश्रय लेना अत्यावश्यक है । दृष्टान्त रूप में कहा जा सकता है कि हमारे इतिहास का अन्यतम श्रेष्ठ युग गुप्त काल का यथार्थ रूप

कालिदास के रघुवंश काव्य में जिस रूप में आत्मप्रकाशित हुआ है वैसा और कहीं नहीं ।

अपेक्षाकृत आधुनिक काल में जब प्रादेशिक भाषा समूहों का अभ्युदय हुआ तब भी राम कथा का चमत्कारी प्रभाव कुछ भी क्षीण नहीं हुआ, बंगला रामायण की बात स्मरण करने से ही इस बात का तात्पर्य स्पष्ट हो जाता है । संस्कृत साहित्य के आदिकवि जैसे वाल्मीकि है, बंगला के आदिकवि वैसे ही कृतिवास है । कृत्तिवास के पूर्ववर्ती चर्यापदों को काव्य न कहकर ऋग्वेद की तरह सूक्त रूप में गण्य करना ही समीचीन है । बंगला साहित्य का आदिकाव्य राम कथा का अवलम्बन कर रचित हुआ था । यह विस्मय का विषय नहीं अपितु सुख का विषय ही है । कृत्तिवास के पूर्व बंगाल में रामायण की चर्चा थी इसके प्रमाण अभिनंद (संभवत: नवम शताब्दी) एवं संध्याकर नंदी (११-१२ शताब्दी) के रचित राम चरित्र (१२ वीं शताब्दी) के काव्यद्वय है । कृत्तिवास का रामायण जैसे आदि बंगला काव्य है, अभिनंद का रामचरित भी संभवत: वैसे ही बंगाल का आदि संस्कृत काव्य है । जो हो सोचने का विषय है कि बंगाल कृत्तिवास व अन्य कवि के किसी एक रामायण को लेकर तृप्त नहीं रह पाया, युग-युग से बंगाल में कितने रामायणों की रचना हुई इसका हिसाब देना कठिन है । जितने महाभारत आज तक मिले हैं बंगला रामायण की संख्या उनसे अधिक है । केवल इतना ही नहीं, जिस कृत्तिवासी रामायण को सभी बंगला रामायणों में शीर्ष स्थान दिया गया है । वह कृत्तिवासी रामायण भी अकेले कृतिवास द्वारा रचित नहीं है । कृतिवास के साथ समग्र बंगला जातीय चित्त ने इस महाकाव्य रचना में योगदान दिया, यही कारण है कि एक-एक युग के आदर्श व रुचि के अनुसार कृत्तिवासी रामायण ने अपना रूप अल्पविस्तर परिवर्तित किया । जिसके फलस्वरूप आजकल हम जो रामायण पाते हैं वह यथार्थ कृतिवासी रामायण मात्र नहीं, वह वस्तुत: बंगाल का जातीय महाकाव्य है । बंगला जातीय इतिहास व साहित्य में इस रामायण का स्थान कितना है यह हमारे लिए विचार्य नहीं ।

केवल बंगला में नहीं, भारतवर्ष का प्रत्येक प्रादेशिक साहित्य ही रामायण के अमृतरस से पुष्ट हुआ है । तमिल (कम्ब रामायण), कन्नड़ (पम्पा रामायण) आदि द्राविड़ साहित्य ने भी अकृपणहस्त से राम चरित्र को श्रद्धांजलि अर्पित की, इन

प्रादेशिक रामायणों में तुलसीदास का रामचरितमानस ही चरम उत्कर्ष को प्राप्त करता है इस विषय में सन्देह नहीं, इस रामायण ने स्वमहिमा से अति अनायास ही प्रादेशिकता की सीमा का अतिक्रमण कर समग्र भारतवर्ष को ही गौरवान्वित किया है। वस्तुतः तुलसीदास कृत रामायण का स्थान केवल भारतीय साहित्य में ही नहीं, विश्व साहित्य में सुनिर्दिष्ट है।

The most celebrated name in Hindi literature is undoubtedly that of Tulsidas, whose Hindi Ramayana has had great and deserved fame not only in India but throughout the whole world.

—F.E.Keay.

भारतीय कविसमाज में तुलसीदास का आसन वाल्मीकि कालिदास के पास ही है इस विषय में द्विमत नहीं हो सकता, तुलसी रामायण की दो दिशाएँ हैं, एक उसकी काव्य सौन्दर्य की और एक उसकी नैतिक् सम्पदा की, मात्र काव्य-सौन्दर्य की ही दृष्टि से रामचरित मानस को निसंशय ही वाल्मीकि-रामायण व रघुवंश के योग्य उत्तराधिकारी रूप में स्वीकार किया जाता है। नैतिक प्रभाव की दृष्टि से रामचरित मानस को रघुवंश से श्रेष्ठ ही कहना होगा, वस्तुतः भारतवर्ष के जातीय नैतिक चरित्र गठन में रामचरितमानस ने जो शक्ति दिखाई है, एकमात्र भगवद् गीता को छोड़ और किसी के साथ उसकी तुलनीयता नहीं है। गीता के संग भी यह तुलनीय है या नहीं, इसमें सन्देह है क्योंकि गीता का प्रभाव मूलतः तत्त्वमय हैं, संस्कृतज्ञ शिक्षित समाज में ही उसका प्रभाव सीमाबद्ध है। तुलसी-रामायण की आकर्षण शक्ति प्रत्यक्ष आदर्शगत है, वह अति सहज ही व्यापक रूप से विपुल जनता को प्रभावित करती है। इसी कारण पाश्चात्य मनीषियों ने इस रामायण को उत्तर भारत के बाइबल रूप में वर्णित किया है। हिन्दी साहित्य के इतिहास रचयिता Keay साहब ने कहा है—

Amougst all clases of the Hindu community in North India. with the exception of a few Sanskrit pandits, it is today every where oppreciated and venerated whether by rich or poor, old or young,

learned or unlearned, and it has some times been called the Bible of the Hindu people of north India.

सुविख्यात भाषाविद् विद्वान जार्ज गीयार्सन का मत भी उद्धृत योग्य है—

Pandits may speak of Vedas and the Upanishads, and a few may even study them, others may say that their beliefs are represented by the Puranas; but for the great majority of the people of Hindustans learned and unlearned, the Ramayana of Tulsidas is the only standard of moral conduct.

रामायण की इस नैतिक मर्यादा का प्रधान कारण रामचरित्रों का महत्त्व है। रामायण के प्रारंभ में ही हम देखते हैं कि वाल्मीकि ने नारद ऋषि से पूछा था कि पृथ्वी में ऐसा कौन मानव् हैं जो—

चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः ।
विद्वान् कः कः समर्थश्च कश्चैकप्रियदर्शनः ॥

आत्मवान् को जितक्रोधो द्युतिमान् कोऽनसूयकः ।
कस्य बिभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे ॥

—आदिकाण्ड, १/३-४

तत्पश्चात् रवीन्द्रनाथ की भाषा उद्धृत करता हूँ—

कह मोरे वीर्य कार क्षमारे करे ना अतिक्रम,
काहार चरित्र घेरि सुकठिन धर्मेर नियम
छरेछे सुन्दर कान्ति माणिक्येर अङ्गदेर मतो,
महैश्वर्ये आछे नम्र, महादैन्ये के हयनि नत,
सम्पदे के थाके भये, विपदे के एकान्त निर्भीक,
के प्रेयेछे सब चेये, के दियेछे ताहार अधिक,
के लमेछे निज शिरे राज भाले मुकुटेर सम
सविनये सगौरवे धरामाझे दुःख महत्तम,

कह मोरे सर्वदर्शी हे देवर्षि तार पुण्य नाम।"
नारद कहिला धीरे, "अयोध्यार रघुपति राम।"

—भाषा ओ छन्द', काहिनी (१९००)

"कहो मुझे वीर्य किसका क्षमा को करता नहीं अतिक्रमण, किसका चरित्र घेरे सुकठिन धर्म का नियम धारण करता है सुंदर कांति माणिक्य के अंग की तरह महैश्वर्य में है नम्र, महादैन्य में कौन हुआ नहीं नत सम्पद में कौन रहता भय में, विपत्ति में कौन एकांत निर्भीक किसने पाया सबसे अधिक किसने दिया उससे अधिक, किसने लिया निज सिर पर राजभाल में मुकुटसम सविनय में सगौरव में धरा बीच में दुख महत्तम, कहो मुझे सर्वदर्शी हे, देवर्षि उसका पुण्य नाम।" नारद ने धीरे कहा, "अयोध्या के रघुपति राम"।

—भाषा ओ छन्द, काहिनी (१९००)

"रामायण इस नर चन्द्रमा की कथा है, देवता की कथा नहीं, रामायण के देवता ने स्वयं को छोटा कर मनुष्य नहीं किया वरन् मनुष्य ही स्वयं के गुणों से देवता हो उठा है।"

—'रामायण : प्राचीन साहित्य,

इसलिए वाल्मीकि की यह उक्ति—

देवतार स्तवगीते देवेरे मानव करिआने,
तुलिब देवता करि मानुषेरे मोरछंद गाने।

'देवता के स्तवगीत से देव को मानव कर लाता हूँ, उठूँगा देवता कर मानव को अपने छन्द गान में।'

वस्तुत: वाल्मीकि ने रामचन्द्र को देव मर्यादा पर प्रतिष्ठित किया था इसीलिए परवर्ती काल में भारतवर्ष ने राम को नर देवता रूप में ही पूजा का अर्घ्य दिया। इसका प्रमाण रामायण ग्रंथ में ही है। वाल्मीकि ने अपने मूल रामायण में (द्वितीय से षष्ठ काण्ड तक) राम को मानव रूप में ही चित्रित किया है। किन्तु नर चरित्र की देवमहिमा से मुग्ध होकर परवर्ती कालीन किसी कवि ने रामायण के दोनों काण्डों (आदि व उत्तर) को संयोजित कर रामचन्द्र को प्रत्यक्ष देवता रूप में ही

स्वीकृत किया, तत्पश्चात् भारतवर्ष के समग्र राम-साहित्य में ही उनकी देवता रूप में वर्णना हुई है। रघुवंश में उनको 'रामाभिधानो हरि:' कृत्तिवास कृत रामायण में भी विष्णु का अवतार कहकर वर्णित किया गया, रामचन्द्र का यह देवत्व तुलसी-रामायण में ही सर्वाधिक परिपुष्ट हुआ है जबकि उनको मानव महिमा से अतीत व साधारण मानव के आदर्श से बहिर्भूत करके नहीं रखा गया, इसलिए ही तुलसी कृत रामायण का नैतिक प्रभाव भारतीय समाज को इस प्रकार उन्नत कर पाया। इस नैतिक गौरव से ही रामायण भारतवर्ष के चित्त में इस प्रकार अनन्य साधारण मर्यादा पर प्रतिष्ठित हो पाया। वाल्मीकि के अनति दीर्घकाल में ही यह प्रभाव सुप्रतिष्ठित हो गया था इसीलिए आदिकाण्ड में ही भविष्यवाणी की गई है—

'यावत् स्थास्यन्ति गिरय: सरितश्च महीतले।
तावद् रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति॥'

आदिकाण्ड, २/३६

यह भविष्यवाणी संभवत: तभी हुई जब रामायण भारतवर्ष के साथ एकात्म हो रहा था, जब यह काव्य देश की चित्तभूमि में 'जाह्नवी हिमाचल' की तरह चिरंतन प्रतिष्ठा का अधिकारी हो रहा था, संस्कृत साहित्य के इतिहास के रचयिता मैकडोनल्ड कहते हैं—

No product of Sanskrit literature has enjoyed a greater popularity in India down to the present day than the Ramayana...Above all, it inspired the greatest poet of medieval Hindustan. Tulsidas, to compose in Hindi his version of the epic entitled Ram-Charit-Manas, which, with its ideal standard of virture and purity, is a kind of Bible to a hundred millions of the people of northern India.

रामायण की इस नीति सम्पदा से संग भारतवर्ष के और किसी साहित्य की तुलना नहीं होती है। भारतीय साहित्य के जिन दो नर चरित्रों ने हमारे जातीय चरित्र पर सर्वाधिक प्रभाव डाला है वे दोनों राम व कृष्ण हैं। इन दोनों चरित्रों का प्रभाव

सम्पूर्ण दो विपरीत दिशा की ओर अग्रसर हुआ, इस विषय पर विस्तृत आलोचना न कर केवल तीन मनस्वी व्यक्तियों के अभिमत उद्धृत कर निरस्त होना चाहता हूँ, हिन्दी साहित्य के ऐतिहासिक Keay का विचार है—

One most commendable feature of the Ramayana is its pure and lofty moral tone which it compares very favourably with the literature put forth buy some of the devoters of Krishna.

—Hindi literature (1920) P. 53

मनस्वी ऐतिहासिक रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर का कहना है—

In the Rama cultus Sita is dutiful and loving wife and is benighant towards devoters of her husband...There is no amorous suggestion in her story as in that of Radha, and consequently the moral influence of Ramaism is more whole some...The Rama cultus represents a saner and purer term of Hindu religions thought than Radha-Krishaism.

—Vaishnavism (1913) P. 87

बहुत पहले ही रवीन्द्रनाथ ने इसी के अनुरूप अभिमत और भी विशद रूप में प्रकट किया था—

'इस बात को स्वीकार करना ही होगा कि पश्चिम में जहाँ रामायण की बात साधारण में बहुल परिमाण में प्रचलित है वहाँ बंगाल की अपेक्षा पौरुष की चर्चा अधिक है। हमारे देश में हर गौरी की कथा में स्त्री-पुरुष एवं राधाकृष्ण की कथा में नायक-नायिका का सम्बन्ध नाना रूप में वर्णित है; किन्तु उसका प्रसार संकीर्ण है, उसमें सर्वांगीण मनुष्यत्व का खाद्य नहीं मिलता, हमारे देश में राधा-कृष्ण की कथा में सौन्दर्य वृत्ति एवं हर गौरी की कथा में हृदयवृत्ति की चर्चा हुई है किन्तु उसमें धर्मवृत्ति की अवतारणा नहीं हुई। उसमें भी वीरत्व, महत्त्व, अविचलित भक्ति व कठोर त्याग स्वीकार का आदर्श नहीं है, राम-सीता का दाम्पत्य हमारे देश में प्रचलित हर-गौरी के दाम्पत्य की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ, उन्नत एवं विशुद्ध है वह

जैसा कठोर-गंभीर है वैसा ही स्निग्ध-कोमल रामायण कथा में एक ओर कर्तव्य की दुरूह काठिन्य है दूसरी ओर भाव की अपरिसीम माधुर्य एकत्र सम्मिलित है। उसमें दाम्पत्य, सौभ्रात्र, पितृभक्ति, प्रभु भक्ति, प्रजावात्सल्य आदि मनुष्य के जितने प्रकार के उच्च अंग के हृदय बंधन है उनका श्रेष्ठ आदर्श प्रस्फुटित हुआ है। उसमें भी सर्वप्रकार के हृदयवृत्ति को महत्व धर्म नियम के द्वारा पग-पग पर संयत करने का कठोर शासन प्रचारित है। पूर्ण रूप से मनुष्य को मनुष्य बनाने की उपयोगी शिक्षा और किसी देश के किसी साहित्य में नहीं। बंगाल की मिट्टी पर वही रामायण कथा हर गौरी व राधाकृष्ण की कथा पर सिर नहीं उठा पाया, यह हमारे देश का ही दुर्भाग्य है। राम को जिन्होंने युद्ध क्षेत्र व कर्म क्षेत्र में नरदेवता के आदर्श रूप में ग्रहण किया है, उनका पौरुष कर्त्तव्यनिष्ठा व धर्मपरता का आदर्श हमारी अपेक्षा उच्चतर है।"

—ग्राम्य साहित्य (१८६८), लोक साहित्य

इस प्रसंग में मनस्वी भूदेव की एक उक्ति स्मरणीय है—

'हिन्दू जाति में जन-साधारण के आदर्श नर नारी श्री रामचंद्र व सीता हैं। हिन्दू जाति के अन्तर्निविष्ट एवं सर्वोपरि ब्राह्मणों के आदर्श महर्षि वशिष्ठ है। इन आदर्शों की अपेक्षा उच्चतर आदर्श पृथ्वी के और किसी देश में किसी काल में सृष्ट हुए हैं? कहीं नहीं।'

—'सामाजिक प्रबंध', (१८९२), तृतीय अध्याय : उन्नतिशीलता,

इससे विशद रूप में रामायण की महत्ता का विश्लेषण संभव नहीं, रामायण प्रचारित सर्वांगीण मनुष्यत्व व धर्म प्रेरणा का यह आदर्श राधाकृष्ण प्रणय कहानी-प्लावित बंगाल में यथोचित प्रभाव विस्तार नहीं कर पाया, इसलिए रवीन्द्रनाथ आक्षेप कर गए हैं।

सुख का विषय यह है कि उस आक्षेप के कारण को दूर करने का सुयोग आज उपस्थित हुआ है। वाल्मीकि का मूल रामायण एवं तुलसीदास का हिन्दी रामायण अर्थात् रामचरितमानस के मूल उत्स एवं उसके श्रेष्ठ परिणति के साथ बंगालियों के साक्षात् परिचय का पथ स्वर्गीय राजशेखर वसु एवं श्री सतीशचन्द्र दासगुप्त सुगम कर गए हैं। राजशेखर बाबू ने मूल संस्कृत रामायण को कुछ

संक्षिप्त आकार में सरल बंगला में अनुवाद किया और प्रयोजनानुसार स्थान-स्थान पर रामायण के स्मरणीय अंशों का पाठ भी उद्धृत किया, इस विशेष प्रणाली के अनुसरण से रामाणय-अनुरागी साधारण पाठकों का कितना उपकार हुआ है उसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता । इससे अल्प आयास से ही मूल रामायण के संग साधारण शिक्षित बंगाली पाठकों का प्राय: सर्वांगीण परिचय सहज साध्य हुआ हैं । विस्तृत रामायण कथा के अवांतर अंश वर्जित हुए हैं, जिससे सप्तकाण्ड रामायण को स्वल्प परिसर में लाना संभव हुआ, समग्र ग्रंथ का मूल संस्कृत पाठ देकर पुस्तक का आयतन व मूल्य साधारण के आग्रह व क्षमता के बाहर नहीं रखा गया अपितु श्लोकों के मूल को जानने का आग्रह बहुतों का हो सकता है एवं यहीं कारण है कि उसका मूल देकर बहुत ही सुविवेचन का परिचय दिया गया है ।

सतीश बाबू के तुलसी रामायण को बंगला साहित्य के श्रेष्ठ अलंकार रूप में वर्णित करना अत्योक्ति नहीं होगा, उसमें मूल हिन्दी पाठ सह उनके सरल सुन्दर बंगला अनुवाद दिए गए हैं । भारतवर्ष की यह अन्यतम श्रेष्ठ रत्न इतने दिनों तक हिन्दी-अनभिज्ञ बंगाली पाठकों के पास अनधिगम्य था, आज वह पथ सर्वत्र रूप से ही सुगम हुआ है । हिन्दी पाठ को बंगाक्षर में मुद्रण करने से लिपि में भी बाधा नहीं हुई है । इसमें संदेह नहीं कि इस बृहत् पुस्तक को साधारण में बहुत रूप से प्रचार करना ही सतीश बाबू का उद्देश्य था, उनका यह उद्देश्य सर्वत्र रूप से ही सिद्ध हुआ है इसका प्रमाण यह है कि इस सुबृहत् हिन्दी रामायण के प्रथम संस्करण मात्र दो वर्ष में ही नि:शेषित हो गए । इसी से प्रमाणित होता है कि यह ग्रंथ बंगाली पाठकों के लिए कितना उपयोगी सिद्ध हुआ ।

राजशेखर बाबू ने अपने रामायण में एक उल्लेखनीय भूमिका लिखी है, भूमिका छोटी है किन्तु इस स्वल्प परिसर में ही उन्होंने अनेक चिन्तनीय विषयों की अवतारणा की है । इससे भी समग्र पुस्तक के प्रति पहले से ही एक आग्रह जन्म लेना ही स्वास्थ्य प्रद खाद्य को जीर्ण करने के लिए यथोचित क्षुधा की जो आवश्यकता है, इस भूमिका के द्वारा समग्र ग्रंथ को आयत करने के लिए वही प्रयोजन सिद्ध होता है ।

सतीश बाबू के सुविस्तृत भूमिका के द्वारा केवल क्षुधा उद्रेक का प्रयोजन ही सिद्ध नहीं होता। इस बृहत् भूमिका के द्वारा समग्र तुलसी रामायण को यथोचित रूप में समझने में सहायता होती है। इस ग्रंथ एवं उसके रचयिता के सम्बन्ध में कई ज्ञातव्य बिषय इस भूमिका में निबद्ध हैं। इस रामायण में प्रधान चरित्रों का वैशिष्ट्य भी विश्लेषित हुआ है, जिसके फलस्वरूप इस भूमिका को ग्रंथ के एक प्रधान अंश रूप में स्वीकार करना होगा। इस भूमिका को समझकर पुस्तक को पढ़ना प्रारंभ करने से और कहीं भी अनधिगम्यता का भय नहीं रह जाता, यह इस बृहत् ग्रंथ के पाठकों के लिए कम लाभकारी नहीं है।

इन दोनों ग्रंथों के द्वारा एक ओर चिरन्तन भारतवर्ष के संग और दूसरी ओर बंगाल से बाहर अवस्थित विशाल जातीय चित्त के साथ बंगला साहित्य को संयुक्त किया गया है। बंगाल के लिए इससे अधिक लाभकारी और कुछ नहीं हो सकता इन दोनों ग्रंथों का प्रकाशन कर अनुवादकद्वय केवल साहित्य समाज का ही नहीं परन्तु समग्र बंगाली जाति का ही कृतज्ञता भाजन हुए हैं क्योंकि उन्होंने मात्र दो ग्रंथों का ही अनुवाद नहीं किया, बृहत् भारतवर्ष के आदर्श व संकल्प को ही बंगालियों को अनूदित कर सुनाया है।

रामायण की मर्मकथा

आधुनिक काल में प्राय: देखा जाता है कि ग्रंथ की भूमिका व अवतरणिका में वक्तव्य के विषय का आभास व स्पष्ट परिचय देकर पाठकों के मन को प्रारंभ से ही ग्रंथ के मर्म ग्रहण के लिए उत्सुक बनाया जाता है । प्राचीन काल में इस तरह की भूमिका लिखने की रीति यद्यपि नहीं थी तथापि प्रकारांतर से विषयवस्तु-अवतारण की रीति तब भी थी, कभी-कभी ऐसे कौशल से मर्मकथा कही जाती थी कि वह अवतारण मात्र ही विशेष तात्पर्य पूर्ण रूप से स्वीकृत होती थी, एक-दो दृष्टांत देने से ही यह बात स्पष्ट होगी ।

महाभारत के आरम्भ में ही कृष्ण द्वैपायन व्यास विपुल महाभारत ग्रंथ के लेखक कौन हो सकते हैं यह सोचकर ही व्याकुल हो उठे, 'परं न लेखक: कश्चिदेतस्य भुवि विद्यते ।' ऐसे समय पर ब्रह्मा ने आकर उन्हें गण देवता को स्मरण करने का निर्देश दिया—'गणेश: स्मर्यताम् मुने,' क्योंकि वही इस महाग्रंथ के एकमात्र योग्य लेखक हो सकते हैं । ब्रह्मा के निर्देश पर ही गणेश लेखक रूप में स्वीकार कर महाभारत की रचना की गई । महाभारत ग्रंथ के प्रारंभ की इस कहानी का तात्पर्य इतना है कि गणदेवता अर्थात् जनगण ही इस ग्रंथ के मूल लेखक एवं व्यास उसके मात्र संकलन कर्त्ता है । हम जानते हैं कि महाभारत का ऐतिहासिक स्वरूप भी यही है ।

कालिदास की शकुंतला में भी देखा जाता है कि ग्रंथ के प्रारंभ में ही मात्र एक वाक्य में नाटक के प्रथम कुछ अंशों की मर्मकथा अति आश्चर्य रूप से ध्वनित हुई है । इस प्रसंग में रवीन्द्रनाथ की उक्ति विशेष रूप से उद्धृत करने योग्य है—

शकुंतला के आरंभ में ही जब धनुर्वाणधारी राजा के प्रति यह करुण निषेध अभिव्यक्त हुआ—'भो भो राजन्, आश्रम मृगोऽयः न हन्तव्यो न हन्तव्य: ।'

तब काव्य का मूल स्वर बज उठा, मूल निषेध से आश्रम-मृग के साथ ही तापस कुमारी शकुंतला को भी करुणाच्छादित किया गया, ऋषि कहते हैं—

मृदु ए मृगदेहे मेरो ना शर ।
आगुन देवे के हे फुलेर पर ?
कोथा हे महाराज, मृगेर प्राण,
कोथाम येन बाज तोमार बाण !

'मृदु-इस मृगदेह में शर न मारो, फूलों पर कौन आग लगाएगा, कहाँ है हे महाराज, मृग का प्राण, कहाँ बजता है तुम्हारा बाण ।'

यह बात शकुंतला पर भी लागू होती है शकुंतला के प्रति भी राजा का प्रणय शर निक्षेप निदारुण हैं...दुष्यंत को दोनों उद्यत बाहु द्वारा प्रतिरोध कर कहने की इच्छा होती है, मत मारो, मत मारो ।"

—शकुंतला, प्राचीन साहित्य

(१)

वाल्मीकि रामायण के आरंभ में भी ठीक इसी रूप में एक वाक्य में ही समग्र काव्य की मर्मवाणी समाहित है । मुनि वाल्मीकि तमसा नदी के तट पर भ्रमण करते हुए देखते हैं कि पास ही एक क्रौंच युगल पक्षी मन के सुख से कूजन करते हुए विचर रहे हैं । ऐसे समय पर एक निषाद ने आकर पक्षी का वध कर दिया, पक्षी रक्ताक्त देह से मिट्टी पर छटपटाने लगा, उसे देख दूसरा पक्षी सहचर के विच्छेद से करुण स्वर में रुदन करने लगा । यह दृश्य देखकर धर्मात्मा वाल्मीकि के हृदय में करुणा का संचार हुआ, तब उन्होंने अधर्मकारी निषाद को लक्ष्य कर कहा,

'मा निषाद् प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वती समाः ।
यत् क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ।।'

—आदिकाण्ड, २/१५

रे निषाद, तू कभी भी प्रतिष्ठा न पा सकेगा क्योंकि तूने काममोहित क्रौंचद्वय में से एक का वध किया है ।

इस प्रकार पक्षी के शोक में करुणार्द्र हृदय वाल्मीकि के कंठ से पद्यबद्ध श्लोक छंद का आविर्भाव हुआ एवं ब्रह्मा के निर्देश क्रम पर उन्होंने शोक पीड़ित हृदय से उक्त श्लोक के छन्द में ही रामायण काव्य की रचना की।

इस सामान्य कथा में समग्र रामायण काव्य की मर्मगत ध्वनि निगूढ़ रूप से ध्वनित होती है। ध्यान रखने योग्य है कि यह कहानी वाल्मीकि की स्वयं की रचना नहीं रामायण काव्य सुप्रचारित होने के बाद जब देश के चित्त में इस काव्य रचना के उपलक्ष्य संबंध में औत्सुक्य जागृत हुआ तभी इस कहानी की कल्पना व रचना हुई एवं समग्र देश ने इसे ही सत्य रूप में स्वीकृत किया, इसका कारण यह है कि समग्र काव्य के मर्मकथा को अभिव्यक्त करने की क्षमता इस कथा में है। इसलिए यह काव्य के आरंभ में ही स्थापित हुआ एवं देश के चित्त ने इसी को युग-युग से रामायण की यथार्थ भूमिका के रूप में स्वीकृत कर लिया।

इस युग युग के स्वीकृत भूमिका के तात्पर्य का अनुधावन करना बहुत सहज है। रामायण काव्य का वास्तविक विषय अरण्यकाण्ड के सीताहरण में ही अभिव्यक्त हुआ है। राम व सीता परम सुख से अरण्यवास कर रहे थे—

'वसतस्तस्य तु सुखं राघवस्य महात्मनः।
शरद्व्यपाये हेमन्तऋतुरिष्टः प्रर्वतत॥'

—अरण्यकांड, १६/१

'अरण्य सुख, में रहते रहते शरत्‌काल के बीतने पर राम के प्रिय हेमन्त ऋतु का आगमन हुआ। तब लक्ष्मण ने उनको हेमन्त के सौन्दर्य वर्णन के उपलक्ष्य में कहा—

'अयं स कालः सम्प्राप्तः प्रियो यस्ते प्रियंवद।
अलंकृत इवाभाति येन संवत्सरः शुभः॥...

वाष्पच्छन्नान्यरण्यानि यवगोधूमवन्ति च।
शोभन्तेऽभ्युदिते सूर्ये नदद्भिः क्रौंचसारसैः॥

खर्जूरपुष्पाकृतिभिः शिरोभिः पूर्णतण्डुलैः।
शोभन्ते किंचिदालम्बाः शालयः कनकप्रभाः॥

—अरण्यकाण्ड १६/८, ११-१२

'हे प्रियंवद, तुम्हारा प्रिय ऋतु समागत हुआ है जिसके द्वारा समस्त वर्ष ही कल्याण मण्डित होकर शोभा पाते हैं...इस सूर्योदय काल में शिशिराच्छन्न यव गोधूम मण्डित एवं क्रौंच सारस के कूजन मुखरित आरण्य समूह ने अपूर्व शोभा प्राप्त की है। खजूर पुष्पाकृति पूर्णतंडुल सिर के भार से किंचित् आनत स्वर्णाभ शालिधान समूह ने कितनी शोभा धारण की है।'

इस शोभा व कल्याणमय परिवेश में राम सीता आनन्द से निवास कर रहे थे। ऐसे समय में सहसा अकल्याण ने आकर आनन्द में विघ्न डाला, राक्षसराज रावण ने सीता का हरण कर रामसीता के सुखमय दाम्पत्य जीवन में चरम दु:ख की छाया डाली, गोदावरी तट की यह करुण कहानी हमें अनिवार्य रूप से तमसा तीर के क्रौंच दम्पति के सुखमय जीवन के आकस्मिक अवसान की कथा स्मरण कराती है। अरण्यचारी रामसीता के सुखमय दाम्पत्य जीवन की वर्णना भारतवासियों के मन में स्वभावत: प्रकृति लालित प्रेमासक्त पक्षी दम्पत्ति के सुखमय जीवन के चित्र को जगा देती है। आधुनिक काल में भी रामसीता के अरण्यवास प्रसंग में कवि के मन में यही चित्र खिलता है—

छिनु मोरा सुलोचने, गोदावरी तीरे
कपोत-कपोती यथा उच्च वृक्षचूड़े
बाँधि नीड़ थाके सुखे।

'हे सुलोचने, गोदावरी तट पर हम लोग सुख से थे, जैसे उच्च वृक्ष चूड़ा पर कपोत-कपोती नीड़ में सुखी रहते हैं।'

प्राचीन काल में भारतीय मन में कपोत-कपोती की जगह क्रौंच-क्रौंची का चित्र जागृत हुआ था और राक्षसराज रावण के प्रतिरूप में निषाद रूपी व्याध की कल्पना ही तत्कालीन मन में जगी थी, सीता हरण का वर्णन रामायण पाठकों के हृदय में जिस शोक व करुणा का उद्रेक करता है वही उसको निषाद कृत क्रौंच निधन की कहानी की सृष्टि कर रामायण के कवि वाल्मीकि के संबंध में गंभीर शोक व करुणा उद्बुद्ध करने को प्रेरित करता है।

समग्र रामायण काव्य का मर्म केन्द्र अरण्यकाण्ड है। इसी काण्ड में ही काव्य सौन्दर्य का चरम विकास हुआ है। अरण्य काण्ड में वाल्मीकि की कवि

प्रतिभा ने जिस सौन्दर्य व करुणामय मायालोक की सृष्टि की है, संस्कृत साहित्य में वह अभूत पूर्व है एवं विश्वसाहित्य में भी उसकी तुलना विरल है। एक ओर परम शोभामय प्राकृतिक परिवेश में राम-सीता के एकांतिक सुखमय दाम्पत्य जीवन का वर्णन एवं दूसरी ओर सीता-हरण के मर्मान्तिक वेदना की कहानी ने इस काण्ड को समग्र काव्य के केन्द्र स्थल पर स्थापित किया, इस बात की जिन्होंने उपलब्धि की, उन्होंने ही इस काण्ड के क्षुद्र प्रतिरूप में क्रौंच निधन की कहानी रचना कर इस को रामायण काव्य की भूमिका की मर्यादा पर प्रतिष्ठित किया। अतएव यह स्वयं की योग्यता और गुणों के आधार पर देश की स्वीकृति प्राप्त कर आज तक उसी मर्यादा का अधिकारी बना हुआ है।

एक ओर शोभा व सुख एवं दूसरी ओर शोक व करुणा अरण्यकाण्ड तथा क्रौंच निधन कहानी को चरम काव्य सौन्दर्य से मण्डित करता है। केवल इतना ही नहीं, दोनों निदारुण शोकावह घटनाओं के मूल में अधार्मिक प्रवृत्ति व निष्ठुरता ही है। यही अधर्म व निष्ठुरता काव्य कला तथा पाठकों के मन में गहरी वेदना व प्रतिवाद प्रवृत्ति को जन्म देती है। निषाद कृत क्रौंच हत्या के प्रसंग में है—

तथाविधं द्विजं दृष्ट्वा निषादेन निपातितम्।
ऋषेर्धर्मात्मनस्तस्य कारुण्यं समपद्यत॥

ततः करुणवेदित्वादधर्मोऽयमिति द्विजः।
निशम्य रुदतीं क्रौंचीमिदं वचनमब्रवीत्॥

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः....

—आदिकाण्ड, २/१३-१५

'निषाद कृत शरविद्ध पक्षी को छटपटाते देख एवं क्रौंची के रुदन को सुन उस धर्मात्मा ऋषि के मन में करुणा का उदय हुआ। अतएव करुणावेश में 'यह काम अधर्म है' इस बोध से ऋषि ने कहा, "मा निषाद" इत्यादि।'

इससे समझा जा सकता है कि इस कहानी के रचयिता तथा तत्कालीन भारतवर्षीय रसज्ञ के मतानुसार रामायण रचना के मूल में भी कवि चित्त की करुणा व धर्मबोध की प्रवृत्ति है और धर्म बोध की प्रवृत्ति से ही ऋषि कंठ से निःसृत हुई थी 'मा निषाद' इत्यादि शोक बद्ध वाणी, यह बात यदि सत्य है, उक्त रसज्ञ की तरह

सीता हरण की घटना पर 'ऋषेर्धर्मात्मनस्तस्य कारुण्यं सम्पद्यत' और इस अधर्माचरण के सम्बन्ध में ऋषि कवि की मनोगत वाणी थी—

मा राक्षस प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वती समाः ।
यन्नरमिथुनादेकामहार्षीः प्रेममोहिताम् ॥

इस मनोभाव का अर्थात् अधर्म की प्रतिविधित्सा के कारण ही ऋषि कवि ने लंका काण्ड युद्ध में राक्षसराज को चिरकाल के लिए प्रतिष्ठाच्युत किया था अर्थात् करुणापरवश धर्मात्मा कवि की रचना के अंत तक यही ऋषि वाक्य ही घोषित हुआ है—

अधर्मेणैधते तावत् ततो भद्राणि पश्यति ।
ततः सपत्नान् जयति समूलस्तु विनश्यति ॥'

अर्थात् अधर्म के द्वारा सुख सम्पद तथा अप्रतिद्वन्द्वी क्षमता के अधिकारी होने पर भी परिणाम में समूल से विनाश अवश्यंभावी है ।

वस्तुतः यही रामायण की मूल वाणी है । 'अतिदर्पे हता लंका' इस चिरागत प्रमाण वाक्य का तात्पर्य भी यही है । जो दर्पित शक्ति धर्म का लंघन करने को उद्यत होती है उसका पतन अनिवार्य है । 'मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः' ऋषिकंठ से निःसृत यह अभिशाप वाक्य ही इस वाणी में ध्वनित है ।

(२)

इस दृष्टान्त से सन्देह नहीं रहता है कि क्रौंच वध कहानी के क्षुद्र परिसर में ही समग्र रामायण काव्य की मर्मकथा सहजाकार में समाहित है । समग्र रामायण से यहाँ पंचकाण्ड रामायण ही समझना चाहिए । क्योंकि क्रौंचवध कहानी में उत्तरकाण्ड का आभास मात्र भी नहीं पाया जाता है । क्रौंचवध व निषाद के प्रति अभिशाप पूर्ण वाक्य का कोई रूपात्मक तात्पर्य है, तो सीता हरण व राम के हाथों रावण का विनाश व सीता उद्धार में रामायण की यथार्थ समाप्ति, यही बात स्वीकार्य है । वस्तुतः ऐतिहासिक विद्वानों ने नाना युक्ति प्रमाणों के द्वारा दिखाया है कि लंका काण्ड के बाद ही रामायण कहानी की स्वाभाविक समाप्ति होती है । उन समस्त युक्ति प्रमाणों के प्रसंग उत्थापन हमारे लिए निष्प्रयोजन हैं । क्रौंचवध कहानी को

भी इस विषय की अन्यतम युक्ति के रूप में गण्य किया जा सकता है ? इस बात को पहले किसी ने कहा है या नहीं ज्ञात नहीं, फिर भी यह युक्ति उपेक्षणीय नहीं है, आशा है इस विषय पर द्विमत नहीं होगा ।

सीता हरण के पश्चात् लंकाकाण्ड में रावण का विनाश, सीता-उद्धार एवं सबसे अंत में राम का राज्याभिषेक ही रामायण-उपाख्यान की स्वाभाविक परिसमाप्ति है । यहाँ तक का प्रसंग ही क्रौंच वध कहानी में प्रतिफलित हुआ है । रामकृत सीता विसर्जन, सीता-पाताल प्रवेश आदि विषय रामायण के मूल आख्यान के साथ संगतिहीन हैं । यह सब परवर्ती कालीन योजना है इसका 'उत्तरकाण्ड' नाम से ही अनुमान किया जा सकता है । यह सब यदि मूल रामायण के अंश होते तो क्रौंच कहानी में ही इनका आभास रहता, यह अनुमान अन्याय नहीं । यदि यहीं हो तो स्वीकार करना पड़ेगा कि क्रौंच कहानी एक ओर मूल पंचकाण्ड रामायण के परवर्ती काल एवं दूसरी ओर उत्तरकाण्ड के पूर्ववर्ती काल की रचना है ।

हमने देखा कि इस कहानी में रामायण की मूल ध्वनि यथातथ्य रूप में प्रतिफलित हुई है । दूसरी ओर, मूल रामायण व उत्तरकाण्ड में व्यंजना भाव व आदर्शगत असंगति बहुत है; उत्तरकाण्ड के रचनाकाल में वाल्मीकि रचित रामायण के आदर्श में ही विकृति दिखाई देती है । मात्र एक दृष्टान्त देना ही यथेष्ट होगा । अयोध्याकाण्ड में देखा जा सकता है कि राम जाति वर्ण निर्विशेष सभी के बंधु है, साथ ही निषाद राज गुहक को भी परम मित्र रूप में स्वीकार करते हैं । अयोध्याकाण्ड में—

तत्र राजा गुहो नाम रामस्यात्मसमः सखा ।....
तमार्तः सम्परिष्वज्य गुहो राघवमब्रवीत् ।।

—अयोध्याकाण्ड, ५०/३२, ३५

इत्यादि उक्तियों से जाना जा सकता है कि शृंगबेरपुर के निषाद राज गुह को राम 'आत्मसमः सखा' मानते थे एवं गुह भी राम को बन्धुवत् आलिंगन करते हैं । यही रामचरित्र का यथार्थ महत्त्व है । दूसरी ओर, उत्तरकाण्ड में रामचरित्र के महत्त्व को प्रकाशित करते समय रचयिता ने उनको शूद्र तपस्वी शंबुक के निधन कर्त्ता रूप में चित्रित किया, यह आदर्शगत पार्थक्य ही रामायण के इन दोनों अंशों

के रचना काल की दीर्घ व्यवधान का परिचायक है । जो ऋषि कवि सामान्य क्रौंच पक्षी की हत्या को देखकर करुणार्द्र हृदय से श्लोक रचना करता है वह कभी भी निरपराध शंबुक की निष्ठुर हत्या कहानी का रचयिता नहीं हो सकता, वैसे ही जो कवि पक्षी जीवन के दाम्पत्य सुख में अवसान घटित करने के दोष से निषादराज को अभिशप्त करता है, उसके मन में कभी भी रामकृत सीता विसर्जन की तरह संगतिहीन निदारुण कल्पना स्थान नहीं पा सकती ।'[१] वस्तुत: क्रौंच कहानी में मूल पंचकाण्ड रामायण का वास्तविक रस संचित है; उत्तरकाण्ड के असंगति का आभास मात्र नहीं है ।

(३)

क्रौंच-निधन-कथा केवल पंचकाण्ड रामायण कथा का संक्षिप्त प्रतिरूप है ऐसा नहीं; इस कथा में कवि वाल्मीकि के अंतर्जीवन की प्रतिच्छवि भी अविकृत रूप से प्रस्फुटित हो उठी है । किसी समय पर यह तत्त्व भारतवर्ष के जन चित्त में समाहित था और यह जन चित्त ही इस आख्यान का वास्तविक रचयिता है—यह बात आधुनिक काल के कवि चित्त में भी स्वीकृत है । कवि के जीवन चरित्र के सत्यालोचना के प्रसंग में रवीन्द्रनाथ ने जो अभिमत प्रकट किया है, यहाँ वह स्मरणीय है—

'हमारे प्राचीन भारतवर्ष के किसी कवि का जीवन चरित्र उपलब्ध नहीं है । मैं इसलिए चिर कौतुहल पूर्ण है किन्तु दु:खित नहीं, वाल्मीकि के संबंध में जो कहानी प्रचलित है उसको इतिहास रूप में कोई गण्य नहीं करेगा किन्तु हमारे अनुसार वही कवि का वास्तविक इतिवृत्त है । वाल्मीकि के पाठक गणों ने वाल्मीकि के काव्य से जो जीवन चरित्र की पुष्टि की है, वह वाल्मीकि के वास्तविक जीवन की अपेक्षा अधिक सत्य है, किस आघात ने वाल्मीकि-हृदय को भेदकर काव्य-उत्स को उच्छ्वसित किया था ? करुणा के आघात ने, रामायण करुणा का अश्रु निर्झर है । क्रौंच विरह का शोकार्त क्रन्दन ही रामायण कथा के मर्म स्थल में ध्वनित होता

---

१. रवीन्द्रनाथ की उक्ति स्मरणीय है—छह काण्ड में जो कहानी वेदना व आनन्द से परिपूर्ण हो उठी है, मात्र उत्तरकाण्ड में उसको असंकोच पूर्ण चूर्ण कर देना क्या सहज बात है ? —'कादम्बरी-चित्र', (१३०६) प्राचीन साहित्य

है । रावण ने भी व्याध की तरह प्रेमी युगल को विच्छिन्न किया, लंका काण्ड का युद्ध उन्मत्त विरही के पंखों की छटपटाहट है । मिलन के पश्चात् भी उस विच्छेद का प्रतिकार नहीं हुआ ।

क्रौंच मिथुन की कहानी रामायण के मूल भाव का संक्षिप्त रूपक है । स्थूल बात यह है कि लोगों ने इस सत्य का निःसन्देह ही आविष्कार किया कि महाकवि का निर्मल अनुष्टुप् छन्द प्रवाह करुणा उत्ताप से ही विगलित होकर स्पन्दमान हुआ है, असमय दाम्पत्य प्रेम का चिर विच्छेद होना ही ऋषि के करुणार्द्र कवित्व को उन्मथित करता है ।'

रामायत धर्म

भारतवर्ष के यथार्थ स्वरूप को जानने के लिए उसके धर्म के इतिहास को विशेष रूप से समझना आवश्यक है क्योंकि भारतवर्ष के धर्म पर ही आचार-व्यवहार, राष्ट्रविधान समाज व्यवस्था व संस्कृति सभी प्रतिष्ठित हैं। एक वाक्य में धर्म ही भारतवर्षीय सभ्यता की एकमात्र भूमिका कही जा सकती है। हमारा जातीय जीवन पूर्ण रूप से ही धर्म के द्वारा वेष्टित व नियंत्रित है, भारतवर्षीय धर्म से इस्लाम व ईसाई धर्म की तरह पुरुष विशेष द्वारा प्रवर्तित किसी क्रीडमूलक धर्म सार को नहीं समझा जाना चाहिए। इस धर्म की प्रकृति पर विचार करने की ओर अग्रसर न होकर मात्र इतना कहना ही हमारे लिए यथेष्ट होगा कि यह धर्म अन्यान्य परिचित धर्म की तरह एकतांत्रिक नहीं है, यह वस्तुत: एक धर्मगोष्ठी है। बृहत् महीरुह की तरह उसके अनेक शाखा-प्रशाखा है। उनमें से वैदिक सनातन धर्म को एक प्रकार से उसके मूल काण्ड के रूप में परिगणित किया जा सकता है। प्रधान शाखाओं में बौद्ध, जैन, वैष्णव, शैव व शाक्त धर्मों का उल्लेख किया जा सकता है। मूलत: शाखा धर्म होने पर भी इनके स्वातन्त्र्य को स्वीकार करना होगा, बौद्ध व जैन धर्म मूलकाण्ड से अनेकांश में विच्छिन्न हो गए थे जिस कारण भारतवर्ष में इनका प्रभाव क्रमश: क्षीण हो गया। अन्य शाखाओं में वैष्णव धर्म का प्रभाव ही सबसे अधिक है। इस धर्म के विपुल विस्तार के कारण इसमें भी कालान्तर में नाना साम्प्रदायिक विभाजन दिखाई दिए। इसके मुख्य दो भाग-कृष्णायत एवं रामायत हैं। कृष्णायत वैष्णव धर्म भारतवर्ष की प्राचीनतम धर्म शाखा है, उसकी उत्पत्ति बौद्ध धर्म से भी पूर्ववर्ती कालीन है और रामायत वैष्णव धर्म प्राचीन धर्म शाखा समूहों में अपेक्षाकृत नवीन है। कृष्णायत व रामायण धर्म में एक और पार्थक्य यह है कि कृष्णायत धर्म मूलत: ऐतिहासिक व्यक्ति विशेष के द्वारा प्रवर्तित है जबकि रामायत धर्म के सम्बन्ध में यह बात नहीं कही जा सकती। इसमें सन्देह नहीं कि देवकी पुत्र वासुदेव कृष्ण

ऐतिहासिक व्यक्ति हैं । कालान्तर में वे देव मर्यादा से प्रतिष्ठित होते हैं एवं 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयं' कहकर पूजा प्राप्त करते हैं । इसीलिए कृष्णभक्ति का धर्म भागवत् धर्म नाम से परिचित हुआ केवल इतना ही नहीं, नाना कारणों से एक समय में कृष्ण को जगत् पालक विष्णु से अभिन्न स्वीकार किया गया, इस प्रकार भागवत् धर्म ने वैष्णव धर्म के साथ एकात्म हो गया । कौशल्या पुत्र दाशरथि राम को ऐतिहासिक व्यक्ति स्वीकार करने का कोई कारण नहीं, वे वस्तुत: कवि कल्पित पुरुष रूप में ही स्वीकृत हैं, जबकि राम ही कालान्तर में विष्णु अवतार रूप में स्वीकृत हुए एवं भारतवर्ष में रामभक्ति धर्म भी प्रवर्तित हुआ, जिसका प्रभाव भी सामान्य मात्र नहीं है । किस प्रकार यह विस्मयकारी घटना घटित हुई, वर्तमान प्रबंध में यह दिखाने की चेष्टा की गयी है ।

(१)

धर्म समाज को धारण करता है इसलिए जब भी धर्म विकृत होता है तब समाज की पतन से रक्षा करने का कोई उपाय नहीं रह जाता, भारतवर्ष के पतन के मूल में भी यही विकार रहा है ।

'धर्म के वेश में मोह जिसे आकर दबोचता है, अंधा वह जन मारता है और केवल मरता है ।'

भारतवर्ष भी इसी प्रकार मरा है, विकृत धर्म का मोह मानव की बुद्धि का नाश करता है एवं 'बुद्धिनाशात् प्रणश्यति' । भारतवर्ष में प्राय: प्रत्येक धर्म ही कालान्तर में विकार ग्रस्त हो जातीय जीवन के सर्वनाश का हेतु बना है । सनातन ब्राह्मण्य धर्म ने मनुष्य की मर्यादा को अस्वीकार कर व समाज व्यवस्था में अस्वाभाविक जटिलता की सृष्टि कर समग्र देश को गतिहीन व शक्ति हीन कर दिया । उदार-आदर्शच्युत बौद्ध धर्म ने केवल देश को नीतिभ्रष्ट ही नहीं किया, स्वयं भी देश से विदा लेने को बाध्य हुआ, जिस भागवत् वैष्णव धर्म ने एक समय पर अपूर्व नीति महिमा के गुण से समग्र देश की श्रद्धा को आकर्षित किया था, उस धर्म ने भी काल के प्रभाव से विकृत हो जातीय जीवन को चारित्रिक कलुषता से कलंकित किया, शैव व शाक्त धर्म का इतिहास भी यही रहा है । एकमात्र रामायत वैष्णव धर्म ने ही चिरकाल विकार से अपनी आत्मरक्षा कर स्वयं को अकलंक महिमा से

नित्य उज्ज्वल रखा। केवल इतना ही नहीं, ठीक जिस समय धर्म मोह ग्रस्त भारतवर्ष नैतिक पतन की चरम सीमा पर आ पहुँचा था ठीक उसी समय उसकी अनेकांश में रामायत धर्म ने ही रक्षा की इसीलिए इस धर्म इतिहास के आलोचना की विशेष सार्थकता है।

स्वभावत: मन में यह प्रश्न जागृत होता है कि रामायत धर्म के प्रवर्तक कौन हैं ? बौद्ध धर्म के प्रवर्तक जैसे बुद्ध हैं, कृष्णायत भागवत धर्म के प्रवर्तक जैसे कृष्ण है, दाशरथि राम के उसी प्रकार रामायत धर्म का प्रवर्तक नहीं कहा जा सकता है। वस्तुत: इस धर्म का कोई प्रवर्तक नहीं है। यदि किसी को इसके प्रवर्तक रूप में स्वीकार करना होगा तो आदिकवि वाल्मीकि को ही इसकी मर्यादा देनी होगी, रामायण काव्य में वाल्मीकि ने जिस आदर्श मानव-चरित्र की रचना की थी वह भारत वर्ष के मन को निष्कलंक देव महिमा से मण्डित प्रतीत हुआ। इसीलिए रवीन्द्रनाथ ने वाल्मीकि के मुख से कहलाया है—

'मनुष्य को देवता बनाऊँगा छन्दिद गान में

वह निरर्थक नहीं है, मनस्वी ऐतिहासिक रामकृष्णगोपाल भण्डारकर ने कहा है—

As depicted by Valmiki, Rama was a high-souled hero, and poets.....still more highly exalted his character. Rama, therefore won a place in the heart of the Indian people. and that must have soon led to the foundation of the cult

—Vaishnavism, Saivism etc....P. 47

इसीलिए कवि वाल्मीकि को ही रामायत वैष्णव धर्म के परोक्ष प्रवर्तक रूप में स्वीकार करना चाहिए। जातीय जीवन पर कवि-कीर्ति का ऐसा प्रभाव शायद पृथ्वी के इतिहास में कहीं भी नहीं पाया जा सकता।

यह बात आज सुविदित है कि वाल्मीकि रचित मूल रामायण में सात काण्ड नहीं वरन् पाँच काण्ड थे। इसे मानने के स्पष्ट कारण हैं कि आदि व उत्तर काण्ड परवर्ती कालीन रचनाएँ हैं, जो हो, हमारे लिए प्रासंगिक विषय यह है कि वाल्मीकि रचित मूल पंच काण्ड रामायण में रामचंद्र आदर्श मानव रूप में ही कल्पित व वर्णित

हुए हैं, देवता रूप में नहीं। किन्तु वाल्मीकि चित्रित रामचन्द्र के देव कल्प चरित्र ने भारतीय चित्र को इस प्रकार मुग्ध किया कि उनको विष्णु के अवतार रूप में स्वीकार करने में कोई बाधा नहीं उत्पन्न हुई। रामायण के आदि व उत्तर काण्ड में ही रामचन्द्र के इस अवतारत्व की स्वीकृति है। यथा—

'इत्येतद् वचनं श्रुत्वा सुराणां विष्णुरात्मवान्।
पितरं रोचयामास तदा दशरथं नृपम्॥

—आदिकाण्ड, १६/८

'देवताओं की बात सुनकर स्वयं विष्णु ने राजा दशरथ को पिता रूप में स्वीकार करने का संकल्प किया।

यह निश्चित जानने का कोई उपाय नहीं कि आदि व उत्तर काण्ड किस समय की रचना है परन्तु यह दोनों काण्ड ही परवर्ती कालीन रचना है, रामचंद के देवत्व स्वीकार में ही इसके प्रमाण हैं। इसके अतिरिक्त, इन दोनों काण्डों में स्वयं वाल्मीकि ही रामचंद्र के समकालीन एक प्राचीन ऋषि रूप में वर्णित हुए हैं, इससे भी मूल रामायण के साथ इन दोनों काण्डों का कालगत दूरत्व सूचित होता है। महाभारत में भी है—

अहं दाशरथी रामो भविष्यामि जगत्पतिः।

—शांतिपर्व, ३३/८५

वायुपुराण में भी रामवतार की बात है किन्तु रामायण, महाभारत व वायुपुराण इन सभी के अंशों का काल निर्णय करना संभव नहीं, इसके प्रमाण उपलब्ध है कि यह सभी ईस्वी संवत् के पूर्व की रचना नहीं है। पातंजल महाभाष्य आदि ईसा पूर्व किसी ग्रंथ में या शिलालेख में रामावतार का परोक्ष उल्लेख भी नहीं मिलता है। दूसरी ओर विद्वान् गण वायुपुराण को ईस्वीं ५वीं शताब्दी की रचना मानते हैं। इसलिए प्रतीत होता है कि उसके पूर्ववर्ती चार-पाँच शताब्दी में ही राम का विष्णुत्व स्वीकृत हुआ था। ऐतिहासकारों के अनुसार कवि कालिदास ५ वीं शताब्दी के हैं। उनके रघुवंश काव्य में भी देखा जाता है कि देव गणों के अनुरोध पर विष्णु दशरथ का पुत्रत्व स्वीकार करने को सम्मत होते हैं। (दशम सर्ग) यह वर्णन रामायण के आदिकाण्ड के अनुसार है। रघुवंश में अन्यत्र (१३/१)

'रामाभिधानो हरिः' कहा गया है इसीलिए इसमें भी सन्देह नहीं कि ५ वीं शताब्दी में ही राम का विष्णुत्व सुप्रतिष्ठित हो गया था। केवल इतना ही नहीं, इस समय शायद राम पूजा का प्रचलन भी प्रारंभ हो गया था क्योंकि परवर्ती शतक के वराहमिहिर (५०५-८९) के 'बृहत्संहिता' ग्रंथ में देखते हैं कि—

दशरथ तनयो रामो बलिश्च वैरोचनिः शतं विंशम्।

'दशरथ तनय राम एवं विरोचन पुत्र बलि की प्रतिमा एक सौ बीस अंगुलि की परिमित में निर्माण करना चाहिए।

इस समय तक रामभक्ति उत्तरभारत से सुदूर दक्षिण भारत तक भी फैल गयी थी इसके प्रमाण मिलते हैं। सप्तम शताब्दी के केरल नृपति कुल शेखर ने अपने इष्टदेवता श्री रामचंद्र की महिमा का कीर्त्तन कर जिन समस्त भक्ति संगीत की रचना की थी वह आज भी अनेक के हृदय को स्पर्श करती है। ईस्वीं ११ वीं शताब्दी में राम विष्णु के प्रभाव का परिचय हम अमित गति नामक जैन लेखक की रचना में पाते हैं। उनकी 'धर्म परीक्षा' नामक पुस्तक (रचनाकाल १०२४) में राम को सर्वज्ञ व सर्वव्यापी जगत् पालक रूप में वर्णित किया गया है। १३ वीं शताब्दी के आनन्दतीर्थ या मध्वाचार्य (११९७-१२७६) के इतिहास में पुनः राम प्रतिमा का साक्षात्कार पाते हैं, उन्होंने स्वयं बदरिकाश्रम से एक राम प्रतिमा का संग्रह किया था एवं अपने एक शिष्य के द्वारा उड़िया स्थित जगन्नाथ से राम व सीता की दो प्रतिमाओं का संग्रह करवाया था। इसी १३ वीं शताब्दी में ही हेमाद्रि प्रणीत 'व्रतखण्ड' नामक ग्रंथ में रामनवमी (चैत्र शुक्ला नवमी) तिथि में राम पूजा का विधि विधान पाया जाता है। १४ वीं शताब्दी के किसी अज्ञात कवि ने अध्यात्म रामायण' नामक काव्य की रचना की थी। वाल्मीकि वर्णित राम कहानी की अनुवृत्ति ही इस काव्य का मूल लक्ष्य नहीं, राम का ईश्वरत्व प्रतिष्ठा एवं रामायत धर्म की आध्यात्मिक तत्त्व व्याख्या ही इस ग्रंथ का मूल उद्देश्य है। इसी ग्रंथ का एक अंश 'राम सीता'नाम से विख्यात है। 'राम गीता'में भगवद् गीता का अनुसरण सुस्पष्ट है। इस ग्रंथ में लक्ष्मण को उपदेश देने के बहाने रामभक्ति-धर्म के अध्यात्म तत्त्व की व्याख्या की गयी है। इस राम गीता के अतिरिक्त परवर्ती काल में और एक राम गीता की रचना की गयी, यह राम गीता अधिक प्रसिद्ध नहीं हो पाया किन्तु

'अध्यात्म रामायण' का प्रभाव व प्रसिद्धि आज तक अक्षुण्य है। इस ग्रंथ का सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक मूल्य यह है कि इसके तत्त्वादर्श से अनुप्राणित होकर परवर्ती काल में तुलसीदास ने अमरकाव्य 'रामचरितमानस' की रचना की थी (१५७५)। यह प्रसंग यथास्थान में पुर्नालोचित होगा,

(२)

इस प्रकार सहस्राधिक वर्षों से रामभक्ति धर्म क्रमश: प्रसारित होता रहा। इस प्रसार का एक ओर प्रमाण रामानुज, रामपाल, राघवानन्द, रामानन्द आदि रामभक्ति मूलक व्यक्ति नामों का क्रमवर्धमान प्रचलन है। रामभक्ति-धर्म के इस क्रमिक प्रसार के बावजूद भी रामायत सम्प्रदाय का उद्‌भव होने में बहुत विलम्ब हुआ था। इसका कारण यह है कि कृष्ण भक्ति आदि अन्यान्य धर्म शाखा की तुलना में रामायत धर्म अपेक्षाकृत अर्वाचीन है एवं जातीय जीवन पर इस धर्म का प्रभाव कभी भी कृष्णायत धर्म की तरह व्यापकता अर्जित नहीं कर पाया। इसीलिए राम भक्तों के लिए संघबद्ध होकर सम्प्रदाय गठन करने में बहुत समय लगा, कब किस प्रकार रामायत सम्प्रदाय का उद्‌भव हुआ यह नहीं जाना जाता है, वस्तुत: १४ वीं शताब्दी के पूर्व इस सम्प्रदाय के अस्तित्व के संबंध में कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है, उक्त शताब्दी में ही रामानन्द के प्रचार व प्रभाव के कारण ही राम भक्ति के धर्म में नव प्राणों का संचार होता है एवं उसी समय से ही यह धर्म भारतवर्ष के जातीय जीवन में एक नवयुग की सूचना करता है। इसी कारण रामानन्द को रामायत सम्प्रदाय के प्रतिष्ठाता रूप में स्वीकार किया जाता है। रामानन्द के जन्म-मृत्यु की तारीख के संबंध में मतभेद है परन्तु वे १४ वीं शताब्दी में विद्यमान थे, इसमें सन्देह नहीं है।

रामानन्द का विस्तृत जीवन चरित ज्ञात नहीं है। जितना ज्ञात है उतना ही हमारे लिए यथेष्ट है, उनका जन्म प्रयाग के कन्नौजिय ब्राह्मण-परिवार में हुआ था एवं उनकी शिक्षा काशी में तत्कालीन प्रथानुसार हुई थी। शिक्षा समाप्त कर वे राघवानंद नामक रामानुजाचार्य-प्रतिष्ठित श्री वैष्णव-सम्प्रदाय के एक आचार्य से शिष्यत्व ग्रहण कर दक्षिण भारत में गए, किन्तु वहाँ पर सामाजिक कारणों से स्वसम्प्रदाय के संग उनका मतभेद हुआ और वे अपमानित होकर उत्तर भारत लौट

आए। उत्तर भारत में आकर उन्होंने एक नूतन सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा करके जिन धर्मान्दोलन का सूत्रपात किया उससे भारतीय जीवन में एक नव जीवन की सूचना हुई, धर्म समाज व संस्कृति इन तीनों दिशाओं में ही नव चेतना का सूत्रपात हुआ। यह कहना अत्युक्ति नहीं होगा कि आधुनिक काल के भारतीय इतिहास में राम मोहन राय का जो स्थान है, मध्य युग के इतिहास में रामानन्द का भी वहीं स्थान रंहा है वर्तमान युग में धर्म-समाज व संस्कृति गत त्रिमुखी जीवन धारा के उत्पत्ति स्थल राममोहन ही है। रामानन्द प्रवर्तित आन्दोलन के इतिहास का अनुसरण करने से देखा जाता है कि एकमात्र राममोहन के साथ ही उनकी तुलना की जा सकती है।

रामानन्द के आविर्भाव काल में भारतवर्ष की क्या दशा थी इसका थोड़ा परिचय पाना आवश्यक है। १३ वीं शताब्दी के प्रारंभ में ही उत्तर-भारत तुर्क विजेताओं के नीचे पदावनत हुआ। इस राष्ट्रीय पराभव के फलस्वरूप उत्तरभारत में धर्म-समाज-व संस्कृति गत जीवन कुछ समय के लिए विदेशी शक्ति के पास मूर्च्छाहत हो गया था। यह मूर्च्छित अवस्था एक शताब्दी से भी अधिक समय तक स्थायी रही। उसके बाद धीरे-धीरे फिर चेतना के लक्षण दिखायी देने लगे। इस चेतना की क्रिया का प्रकाशन दो विपरीत दिशाओं में प्रस्फुटित हुआ। तुर्क-विजय के साथ-साथ ही इस्लामीय धर्म, समाज व संस्कृति ने इस देश में स्थायी रूप से प्रतिष्ठा प्राप्त की। उसके संस्पर्श में आकर एक ओर रक्षणशील संकोच-प्रवणता दिखाई दी, दूसरी ओर समन्वयमुखी प्रसार शक्ति का जागरण हुआ। एक ओर रक्षणशील स्मार्त पण्डितों ने कठोर विधान का प्रयोग किया तथा विदेशी संस्पर्श से समाज की रक्षा में व्रती हुए। दूसरी ओर संस्कार पंथी धर्म गुरु गणों ने समस्त संकीर्णता के घेरे को तोड़कर उदार मानव धर्म की साधारण भूमि पर सर्वधर्म समन्वय का व्रत लिय। बंगाल में इन दो विपरीत पंथों के नायक रूप में स्मार्त रघुनन्दन व धर्मगुरु चैतन्य का आविर्भाव हुआ था। आधुनिक युग में भी ईसाई धर्म व संस्कृति के संस्पर्श में आने से बंगाल में इन दो प्रकार की प्रतिक्रियाएँ दिखाई दी थी। इसमें अन्त तक उदार व संस्कार पंथी राममोहन की प्रचेष्टा की ही विजय हुई थी। मध्ययुग में भी उसी प्रकार रामानन्द का आश्रय लेकर भारतवर्ष के नित्य प्रसार शील प्राणशक्ति ने आत्म प्रकाश किया।

पहले ही कहा जा चुका है कि रामानन्द पहले रामानुजाचार्य प्रवर्तित श्री वैष्णव सम्प्रदाय के अनुवर्ती थे। सामाजिक विषयों में वैष्णव सम्प्रदाय पहले से ही ब्राह्मण्य सम्प्रदाय से उदार था। ब्राह्मण्य समाज में स्वीकृत जाति-भेद प्रथा अर्थात् वर्णगत उच्च नीच भेद का बोध वैष्णवों में कभी भी उतना प्रबल नहीं रहा था। ब्राह्मण्य शास्त्र ने निम्न वर्ण को केवल सामाजिक समता से ही वंचित नहीं किया था बल्कि उसके धर्माधिकारों को भी संकुचित कर रखा था। वैष्णवों ने सामाजिक विषयों में ब्राह्मण्य शास्त्रीय विधान के आनुगत्य को स्वीकार लेने पर भी धर्म के विषय पर सब वर्णों की समता को प्रारंभ से ही स्वीकार कर लिया था। गीता में भी उसके प्रमाण उपलब्ध हैं—

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥

—गीता, ९/३२

इससे समझा जा सकता है कि गीता के अनुसार कृष्ण भक्ति का आश्रय लेने से स्त्री लोक एवं वैश्य, शूद्र भी उच्चतर वर्ण की तरह परमागति के अधिकारी होते हैं। ब्राह्मण्य समाज में यह धर्मगत समानाधिकार कभी भी स्वीकृत नहीं हो पाया। धर्म क्षेत्र में भक्ति व मुक्ति के समानाधिकार को स्वीकार लेने पर भी वैष्णवाचार्यों ने आहार व विवाहादि सामाजिक विषयों में कभी सामान्य नीति का समर्थन नहीं किया। दक्षिण भारत में रामानुजाचार्य के श्री वैष्णव सम्प्रदाय में ब्राह्मण्य विधि विधान अधिकतर कठोर रूप में ही अनुसृत होते थे। धर्मगत साम्य व समाजगत वैषम्य, इन दोनों में जो मौलिक असंगति है वह इन दोनों नीतियों को दीर्घ समय से नहीं चला सकती। यह बोध श्री वैष्णव सम्प्रदाय में कभी नहीं जगा। वस्तुतः इसी विषय को लेकर दक्षिणी वैष्णवों के संग रामानन्द का विरोध हुआ था। फलस्वरूप उन्होंने उत्तर भारत में लौटकर एक नूतन सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा की। इस विषय में स्वर्गीय हेमचन्द्र रायचौधरी की यह उक्ति उद्धृतयोग्य है—

The conservatism of the southern Vaishnavas in social matters was productive of important consequences in later times. Ramananda, one of the apostolic successors of Ramanuja, insulted by

his brethern for his social inferority, returned to the worth, the land of his birth and established the famous sect which can boast of a Kabir and a Tuli Das.

—Early History of the Vaishnava Sect. (2nd ed). P 196.

उत्तर भारत में लौटकर उन्होंने अपने प्रतिष्ठित सम्प्रदाय में धर्म साम्य के साथ-साथ समाज साम्य की आधारशिला को भी दृढ़ रूप से प्रतिष्ठित किया। इस विषय पर स्वनाम ख्यात रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर की मात्र एक उक्ति उद्धृत करने से ही इस संस्कार के महत्त्व को समझा जा सकता है—

Ramananda now began a radiciar reform and made no distinction between Brahmanas and members of the degraded castes, and all could even dive together provided they were devotees of Vishnu and had been admitted into his fold.

—Vaishnavism etc. p. 66

ब्राह्मण्य तंत्र शासित भारत वर्ष में ब्राह्मण-अब्राह्मण के समस्त पार्थक्य को मिटा देने से अधिक वैप्लाविक प्रचेष्टा और क्या हो सकती है ? इस दु:साहसिकता के कार्य में एकमात्र गौतम बुद्ध को छोड़कर अन्य किसी के साथ उनकी तुलना नहीं हो सकती। जिस ब्राह्मण प्राधान्यता को अस्वीकार करने के कारण बौद्ध धर्म को भारतवर्ष से विदाई लेनी पड़ी थी, प्राय: दो हज़ार वर्ष बाद उसी ब्राह्मण प्राधान्यता को उन्होंने अस्वीकार किया, आज इसे अनुभव करना भी कठिन है कि उस संकीर्णता के युग में यह घटना कितनी युगांतकारी थी। गौतम बुद्ध की तरह रामानन्द ने भी ऊँच-नीच वर्ण निर्विशेष सब वर्णों से ही शिष्य को ग्रहण किया था। उनके जिन बारह शिष्यों ने विशेष ख्याति अर्जित की है उसमें एक नाई (सेना) एक चमार (रैदास) एवं एक मुसलमान जुलाहा (कबीर) था। बुद्ध की तरह रामानन्द ने भी नारी शिष्या को स्वीकार किया था। उनके शिष्याओं में पद्मावती का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

रामभक्ति के साधकों ने इस प्रकार सर्वप्रथम निम्नवर्ण के लिए जो धर्मगत तथा सामाजिक मुक्ति का द्वारा खोल दिया था। उसकी विशेष ऐतिहासिक संगति है। वाल्मीकि वर्णित राम चरित्र में ही इस मुक्ति का बीज निहित है। निषादराज गुहक को रामचंद्र ने परमबंधु के रूप में स्वीकार किया था, यह तथ्य भारतवर्ष के घृणित व पीड़ित अन्त्यज सम्प्रदाय में मुक्ति की विपुल संभावना को दीर्घ समय से वहन करता आ रहा था। रामायण में है—

तत्र राजा गुहो नाम रामस्यात्मसमः सखा।.....
तमार्तः संपरिष्वज्य गुहो राघवमब्रवीत्॥

—अयोध्याकाण्ड, ५०/३२, ३५

निषाद जाति के गुह को रामचन्द्र 'आत्मसमः सखा' रूप में मानते थे एवं गुह भी उनका व्याकुलता से ही आलिंगन करते थे, वाल्मीकि की इस उक्ति ने मध्ययुग के राम भक्त धर्म नेता का आश्रय लेकर भारतवर्ष के इतिहास में एक नवयुग की सूचना की थी। रामायण में यह भी कहा गया है कि परम वेदनार्त होकर गुह एक दिन कहते हैं कि—

नहि रामात् प्रियतमो ममास्ते भुवि कश्चन।

—अयोध्याकाण्ड, ५१/४

'राम से अधिक इस पृथ्वी में मेरा कोई प्रिय नहीं; निषादराज गुह की यह उक्ति परवर्ती काल में भारत वर्ष के समग्र तथा कथित अन्त्यज समाज की वाणी के रूप में गृहीत हुई।

रामानन्द ने यह जो वर्ण वैषम्य मिटाने की चेष्टा की, कालान्तर में उत्तर भारत में सर्वत्र एवं दाक्षिणात्य में किसी किसी अंग में उसका प्रभाव विस्तृत हुआ। बंगाल में चैतन्य देव, उत्तरप्रदेश में कबीर, पंजाब में नानक एवं महाराष्ट्र में एकनाथ सभी ने वर्ण वैषम्यता के मूल पर आघात कर हिन्दू समाज को अनेकांश में दुर्बलता से मुक्त किया। इसके अतिरिक्त एक मुसलमान शिष्य ग्रहण कर रामानन्द ने मात्र अपरिसीम उदारता का ही परिचय नहीं दिया था (विशेषतः तत्कालीन समय में) वरन् इस प्रकार उन्होंने हिन्दू एवं मुसलमानों के धर्म व संस्कृति जन्य समन्वय साधन का पथ-प्रदर्शित भी किया था, श्री चैतन्य, कबीर, दादू, नानक आदि ने भी

परवर्ती काल में इसी पथ का अनुगमन किया था फलस्वरूप हिन्दू व मुसलमानों के समाज व संस्कृति जन्य पार्थक्य बहुलांश में मिट कर जिस नवजातीयता का आरंभ हुआ उसका मूल्य भी कम नहीं एवं उसका विचित्र इतिहास भी बहुत ही औत्सुक्यकारी है। किन्तु हमारे लिए वह अप्रासंगिक है परन्तु एक तुलना की बात कहना अनुचित नहीं होगा, आधुनिक काल में हिन्दू व ईसाई धर्म के पारस्परिक मेल जोल का एक फल यह हुआ कि किसी किसी क्षेत्र में विदेशी ईसाईयों ने भी इस देश के धर्म गुरुओं का शिष्यत्व ग्रहण किया। दृष्टान्त रूप में स्वामी विवेकानन्द, श्री अरविन्द व महात्मा गाँधी के विदेशी शिष्यों की बात उल्लेखनीय है, ठीक इसी कारण कुछ मुसलमान रामानन्द, कबीर, चैतन्य व नानक का शिष्यत्व ग्रहण करने में प्रवर्तित हुए।

सामाजिक विषयों की तरह नैतिक विषय में भी रामानन्द प्रवर्तित धर्म ने देश में कल्याण का संचार किया। पहले ही कहा जा चुका है कि तत्कालीन देश में कृष्ण भक्ति के धर्म ने ही सबसे अधिक प्राधान्य प्राप्त किया था किन्तु वह धर्म गीता प्रोक्त विशुद्ध भागवत धर्म नहीं है। कुरुक्षेत्र के पार्थसारथि कृष्ण को प्राय: सम्पूर्ण रूप से आच्छन्न कर उस समय राधादि गोपांगना परिवृत वृन्दावन के मुरली-धर कृष्ण ने भारतीय चित्त में आधिपत्य किया था। तब पौरुष धर्म देश के चित्त में पूर्ण रूप से ही अंतर्हित हो गया था एवं उसका स्थान नारी के मोह ने ग्रहण कर लिया था। जबकि कृष्ण को भी आच्छन्न कर राधा प्राधान्य ने ही तब समग्र देश में मोह विस्तार किया था। राधा प्राधान्य व गोपी लीला के प्रभाव ने देश के चित्त को केवल पौरुषहीन जड़त्व ही प्रदान नहीं किया वरन् चरम नैतिक कलुषता से कलंकित भी किया। इस नीति कलुषता के युग में रामानन्द में राधाकृष्ण की जगह राम सीता के उन्नत आदर्श को जाति के सम्मुख उपस्थित कर जो महत्त्वपूर्ण उपकार किया उसकी तुलना विरल है। इस विषय पर अधिक आलोचना में प्रवृत्त न होकर केवल वैष्णव धर्म के इतिहास प्रणेता रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर की एक दो उक्ति उद्धृत करके ही विरत होना चाहूँगा, रामानन्द प्रवर्तित धर्म के प्रसंग में उन्होंने कहा है—

A very important reform made by him was the introduction of the purer and more chaste

worship of Rama and Sita instead of that of Krishna and Radha.

—Vaishnavism etc, P. 66

इसी पुस्तक में अन्यत्र (पृ. ८७) में उन्होंने कहा है—

The introduction of Radha's name and her elevation to a higher position even than Krisha's operated as a degrading element in Vaisnavism, not only because she was a woman, but also because she was originally a mistress of the cowherd god, and her amorous dealings were of an overt character...The Rama cultus represents a saner and purer form of Hindu religious thought than Radha-Krishnaism.

इस प्रकार रामानन्द के केवल हमारे नैतिक अधोगति को ही नहीं रोका वरन् देश के चित्त को उच्चतर व महत्तर आदर्श के प्रति आकर्षित भी किया, रामभक्ति के प्रभाव ने जातीय चित्त को किस प्रकार महत्तर की प्रेरणा दी थी इसका परिचय स्वयं ने दिया है । उन्हीं की बात उद्धृत करता हूँ—

'इस बात को स्वीकार करना ही होगा कि पश्चिम में, जहाँ रामायण की बात साधारण में बहुल परिमाण में प्रचलित है वहाँ बंगाल की अपेक्षा पौरुष की चर्चा अधिक है ।...रामायण कथा में एक ओर कर्तव्य का दुरूह काठिन्य है तो दूसरी ओर भाव का अपरिसीम माधुर्य एकत्र सम्मिलित हैं । उसमें दाम्पत्य, सौभ्रात्र, पितृभक्ति, प्रभुभक्ति, प्रजावात्सल्य आदि मनुष्य के जितने प्रकार के उच्च अंग के हृदय बंधन हैं उनका श्रेष्ठ आदर्श प्रस्फुटित हुआ है । उसमें भी सर्वप्रकार की हृदय वृत्ति को महत् धर्म नियम के द्वारा पग-२ पर संयत करने का कठोर शासन प्रचारित हैं । पूर्ण रूप से मनुष्य को मनुष्य बनाने की उपयोगी शिक्षा और किसी देश के किसी साहित्य में नहीं, बंगाल की मिट्टी पर वही रामायण कथा हर गौरी व राधाकृष्ण की कथा पर सिर नहीं उठा पाया वह हमारे देश का ही दुर्भाग्य है । राम को जिन्होंने युद्ध क्षेत्र व कर्मक्षेत्र में नर देवता के आदर्श रूप में ग्रहण किया है, उनका पौरुष, कर्तव्य निष्ठा व धर्मपरता का आदर्श हमारी अपेक्षा उच्चतर है ।'

—'ग्राम्य साहित्य,' (१८९८) लोक साहित्य

सुचिर काल परिचित सप्तकाण्ड रामायण के स्वरूप वर्णन-प्रसंग में रवीन्द्रनाथ ने अन्यत्र कहा है—

"रामचन्द्र की पूज्य स्मृति धीरे-धीरे कालान्तर व अवस्थांतर का अनुसरण कर अपनी पूजनीयता को साधारण की भक्ति वृत्ति का उपयोगी बना रहा था। कवि ने अपनी प्रतिभा के द्वारा उसको एक जगह घनीभूत व सुस्पष्ट किया तब सर्वसाधारण की भक्ति वृत्ति चरितार्थ हुई।

रामायण के आदिकवि ने गार्हस्थ्य प्रधान हिन्दू समाज के धर्म के अनुरूप ही राम को उसके अवतार रूप में दिखाया। पुत्र रूप में, भ्रातृ रूप में, पतिरूप में, बंधुरूप में, ब्राह्मण धर्म के रक्षा कर्त्ता रूप में, अंत में राजा रूप में वाल्मीकि के राम ने अपनी लोक पूज्यता को प्रमाणित किया।....अपनी समस्त सहज प्रवृत्ति को कठोर शासन में बाँधकर समाज रक्षा के आदर्श को दिखाया था। हमारी स्थिति प्रधान सभ्यता के पग २ पर जिस त्याग, क्षमा व आत्म निग्रह का प्रयोजन है, राम के चरित्र में वही प्रस्फुटित होकर रामायण को हिन्दू समाज का महाकाव्य बना देता है।

इस तरह राम क्रमशः देवता पद पर आसीन हुए।"

—साहित्य सृष्टि (१९०७), साहित्य

रामानंद ने इस सर्वांगीण मनुष्यत्व के आदर्श को ही देश के सामने उपस्थित किया था, एकमात्र इसी नैतिक उन्नयन के कारण वे हमारे इतिहास में चिर वरेण्य है।

(४)

धर्म के क्षेत्र में भी वे इसी के अनुरूप कृतित्व के अधिकारी है, वे स्वयं तो संन्यासी थे किन्तु उनके द्वारा प्रवर्तित धर्म में सन्यास की अपेक्षा पारिवारिक व सामाजिक जीवन के कर्तव्य निष्ठा की प्रेरणा ही अधिक दी, वस्तुतः राम भक्ति का धर्म मूलतः सन्यास धर्म के अनुकूल नहीं है, गीता के कर्म योग की महिमा तत्त्वोपदेश के द्वारा प्रचारित हुई, रामायण में वही कर्म निष्ठा का आदर्श प्रत्यक्ष दृष्टान्त रूप में उपस्थित हुआ, रामानन्द ने इस द्वितीय आदर्श को प्राधान्य देकर देश को संन्यास की निष्क्रियता से रक्षा कर कर्तव्य परायणता की प्रेरणा दी थी, चैतन्य प्रवर्तित वैष्णव

धर्म की भाव-विह्वलता व वल्लभाचार्य के अनुष्ठान बहुलता से उनका धर्म मुक्त था। रामानन्द ने भावावेग व अनुष्ठानादि की जगह युक्ति निष्ठा को ही प्रधानता दी थी। यह कहना अत्युक्ति नहीं होगा कि इस युक्ति निष्ठता ने मध्ययुग में धर्मान्दोलन के क्षेत्र में एक गंभीर विप्लव की सृष्टि की थी। रामानन्द ने जिन दोहों की रचना की उनकी संख्या अधिक नहीं किन्तु उनमें उनके धर्म मत का स्पष्ट परिचय पाया जा सकता है। F. E. Keay के हिन्दी साहित्य के इतिहास से एक अंश उद्धृत करने से ही रामानन्द का वैप्लाविक धर्मादर्श सुस्पष्ट हो उठता है—

Hymns in Hindi purporting to have been written by him are still preserved, one of them in the Adi Granth. In this hymn he seems to be declining an invitation to go and worship Vishnu in a temple, on the ground that God is all-pervading and that he has found God in his heart.

—History of Hindi Literature, P. 21

सर्वव्यापी तथा अंतर्यामी भगवान की आराधना के लिए किसी मन्दिर में जाना निरर्थक है, इस क्षुद्र उक्ति ने भारतीय धर्म के इतिहास में जिस युगांतर की सूचना की थी उसके महत्त्व को अस्वीकार करना संभव नहीं, भारतवर्ष के इतिहास में रामानंद के साथ प्राचीन काल के वैदिक यज्ञानुष्ठान के विरोधी बुद्धदेव एवं आधुनिक काल के मूर्ति पूजा विरोधी राममोहन की तुलना की जा सकती है। बुद्धदेव द्वारा प्रवर्तित नव धर्म ने भारतवर्ष को दीर्घकाल तक प्रभावित किया और राममोहन का प्रभाव आज भी भारतवर्ष के चिन्तन राज्य में सक्रिय है। रामानन्द के प्रभाव ने भी उसी प्रकार दीर्घकाल तक भारतीय धर्मान्दोलन को प्रभावित व नियंत्रित किया। पूर्वोक्त हिन्दी साहित्य के इतिहास से ही एक अंश उद्धृत करता हूँ—

He was undoubtely one of the most inportant Hindu religious leaders of Northern India, for not only is the sect of Ramanand's, which acknowledges him as its direct founder, still very large, but a great many other sects owe their first impulse to the movement he initiated or else were founded

by those who were originally his desciples or members of his sect.

—History of Hindi Literature, P. 21

वस्तुत: रामानंद के प्रवर्तन के फलस्वरूप उद्‌भूत बहु संख्यक धर्म सम्प्रदाय समग्र उत्तर भारत में विस्तृत है । जिन धर्म गुरुओं ने प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से रामानंद से प्रवर्तना प्राप्त की थी उनमें कबीर, नानक व दादू का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है । आज कल भी भारतवर्ष में इन तीनों द्वारा प्रतिष्ठित धर्म सम्प्रदाय का महत्त्व कम नहीं है परन्तु मूल रामानंदी सम्प्रदाय को ही इनके आदि-उत्स रूप में स्वीकार करना चाहिए, किन्तु दो एक प्रधान विषय में रामानंदी सम्प्रदाय के साथ इनका यथेष्ट पार्थक्य है । रामानंद अवतारवाद में विश्वास करते थे एवं विष्णु अवतार सीतापति रामचंद्र के प्रति उन्होंने अपने अंतर की भक्ति निवेदित की थी किन्तु कबीर आदि अन्य कई अवतारवाद के विश्वासी नहीं थे, राम से वे जगत पति भगवान् को ही मानते थे । द्वितीयत: रामानन्द ने मन्दिर व मूर्ति की निन्दा करते हुए भी स्वसम्प्रदाय में उन्होंने मूर्ति पूजा का निषेध नहीं किया था । किन्तु कबीरादि नव्यदल ने सम्पूर्ण रूप से ही मूर्ति पूजा का परिहार किया । इस विषय में आदि ग्रंथोद्धृत रामानंद की उक्ति का ही उन्होंने कार्यत: अनुसरण किया था । वे सभी निराकारवादी थे । सिख सम्प्रदाय का 'अलख निरंजन' तो सुप्रसिद्ध ही है इसलिए उनके धर्म ग्रंथ में रामानन्द का उक्त दोहा साग्रह गृहीत हुआ था । रामानंद प्रशस्त पथ का ही अनुसरण कर कबीर व नानक निराकारवाद की ओर अग्रसर हुए । उसी प्रकार हिन्दू व मुस्लिम धर्म के समन्वय में वे रामानंद के ही उत्तराधिकारी है, पार्थक्य सिर्फ इतना है कि इस पथ में वे उनसे भी आगे अग्रसर हुए थे । कबीर को रामानन्द से ही प्रेरणा मिली थी—इसका प्रमाण उनकी निजी उक्ति में ही है—

कासी में हम प्रगट भये हैं रामानन्द चेताये,
प्यास अहद की साथ हम लाये मिलन करन को आये ।

—क्षिति मोहन सेन: 'कबीर' द्वितीय खण्ड (१९१२) पृष्ठ ८८

'मैं काशी में प्रकट हुआ, मुझ में रामानन्द ने चेतना संचार की, मैं अपने साथ असीम की पिपासा लाया हूँ और मिलन-साघन करने के लिए आया हूँ ।'

यह मिलन की वाणी ही भारत पथिक कबीर द्वारा प्रवर्तित धर्म साधना की मर्मकथा है। भारतवर्ष के सभी धर्मों को एक मानवधर्म के आधार पर प्रतिष्ठत करना ही उनका एकमात्र लक्ष्य था—

राम खुदा शिव शक्ति एकै—
वेद पुरान कितेव कुराना नाना भाति बखाना,
हिन्दू तुर्क जैनी ऊ योगी ये कल काहु न जाना ॥

—क्षितिमोहन सेन: 'कबीर' द्वितीय खण्ड, पृ. १२

'राम, खुदा शिव शक्ति एक ही है।....वेद, पुराण, किताब, कुरान, इन सब की व्याख्या नाना विध है। हिन्दू तुर्क जैन योगी—यह रहस्य कोई नहीं जानता।'

राम, खुदा, शिव व शक्ति सब एक ही है, इस बोध में भारत के सभी धर्मों को कबीर मिलाना चाहते थे। इस प्रकार रामानन्द प्रवर्तित राम भक्ति का धर्म कबीर की साधना से समग्र भारत में ऐक्य स्थापन के पथ पर अग्रसर हुआ इसलिए कबीर ने स्वयं का परिचय 'भारत पंथी' कहकर दिया है। राम चरित्र का आदर्श जिस प्रकार बाहर से आर्य-अनार्य-निर्विशेष सभी भारतीयों को प्रीति के बंधन में बाँधने को उद्यत हुआ था। राम भक्ति का धर्म भी उसी प्रकार कालान्तर में प्रशस्त हो कबीर के युग में आकर शैव-शाक्त एवं हिन्दू-मुसलमान-निर्विशेष सभी भारतीयों को उदार प्रेम के क्षेत्र में एकत्र मिलाने को प्रयासी हुआ। कबीर के प्रभाव से रामभक्ति का धर्म उदार विश्व मानवता के पथ पर कितना प्रसारित होता है, उसके प्रमाण स्वरूप कबीर की यह वाणी उद्धृत कर रहा हूँ—

जो खोदाय मसजीद वसतु है और मुलुक केहि केरा।
तीरथ मूरत राम निवासी बाहर करे को हेरा ॥

पूरब दिशा हरि को वासा पश्चिम अलह मुकामा।
दिल में खोजि दिलहिमा खोजा इहै करीमा रामा ॥

जेते औरत मरद उपानी सो सब रूप तुम्हारा।
कबीर पोंगरा अलह राम का सो गुरु पीर हमारा ॥

—क्षितिमोहन सेन : 'कबीर' तृतीय खण्ड (१९१२) पृ. २

'खुदा यदि मस्जिद में ही निवास करते हैं और मुल्क फिर किसके हैं ? यदि तीर्थ की मूर्ति में ही राम का निवास है, बाहर फिर कौन दिखता है ?

पूर्व दिशा में हरि का निवास है पश्चिम में अल्लाह का मुकाम है, अंतर में खोजा, अंतर में ही खोजो—यहीं पर करीम व राम हैं ।

दुनिया में जितने नारी व नर हैं, वे सब तुम्हारे ही रूप हैं ।

कबीर अल्लाह के भी पुत्र हैं, राम के भी पुत्र हैं, मेरे गुरु भी वहीं हैं, मेरे पीर भी वही हैं ।

रवीन्द्रनाथ ने कबीर के एक सौ दोहों का अंग्रेजी अनुवाद किया था, उसमें उद्धृत दोहे ने भी स्थान पाया था । वह अनुवाद यहाँ दिया जा रहा है—

If God be within the mosque, then to whom does
this world belong?
If Ram be within the image which you find upon
Your Pilgrimage, then who is there to know
what happens without?
Hari is in the east, Allah is in the west look
within your heart, for there you will find
both Karim and Ram
All the men and women of the world are
His living forms.
Kabir is the child of Allah and of Ram
He is my Guru, He is my Pir

—One Hundred poems of Kabir. No. LXIX

इससे उच्चतर धर्म और क्या हो सकता है ? ध्यातव्य है, कबीर हिन्दू व मुसलमान के उभय धर्मों का ही संस्कार कर विश्व मानवता के सामान्य भूमि पर लाकर समन्वित करने के व्रती हुए थे, स्मरण रखना होगा कि इस समन्वय प्रयास

के आदि-उत्स रामानन्द ही थे । वस्तुतः यूरोपीय धर्म संस्कार आन्दोलन के इतिहास में मार्टिन लुथर का जो स्थान है, भारतवर्ष में मध्ययुगीन इतिहास में रामानंद का वही स्थान है । पार्थक्य यह है कि लुथर में जो उग्र विद्रोह की भावना दिखायी देती है, रामानन्द में वह नहीं थी, जो शान्ति व उदार प्रसन्नता भारतीय धर्म का एक विशेष लक्षण है, रामानन्द में उन्हीं का प्रकाश हुआ था । लुथर की अपेक्षा रामानंद की समस्या अधिक गुरुतर थी, लुथर को सिर्फ ईसाई धर्म का ही संस्कार करना पड़ा था किन्तु रामानन्द के समय में एक ओर ब्राह्मण शूद्र की वैषम्यगत सामाजिक समस्या थी एवं दूसरी ओर हिन्दू व मुसलमानों की संघात पूर्ण धर्म समस्या थी । वस्तुतः रामानन्द कृत आन्दोलन का महत्त्व लुथर के आन्दोलन से अधिक था । यूरोपीय संस्कार आंदोलन में ज्विगली, केल्विन आदि का जो स्थान था । भारतीय मध्ययुगीन इतिहास में कबीर, नानक आदि का भी वही स्थान था । यदि समस्या की गंभीरता व समाधान के वैशिष्ट्य पर विचार किया जाए तो शायद नानक-कबीर को केल्विन आदि से ऊर्ध्व में ही स्थापित करना होगा ।

(५)

अब संस्कृति के क्षेत्र में रामानंद के कृतित्व पर विचार किया जाएँ । इस प्रसंग में पहले ही कहा जा सकता है कि रामानन्द ही मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य के प्राण प्रतिष्ठाता है । उनके धर्म प्रचार प्रसंग में Keay अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में कहते हैं—

It is generally agreed that it was Ramananda who gave the greatest impulse to the religious revival in North India about this time.

इस विषय में शायद मतभेद नहीं है कि हिन्दी साहित्य सृष्टि के विषय में उन्होंने ही सर्वप्रथम व सर्वाधिक प्रेरणा दी थी । यह बात नहीं है कि रामानन्द से पूर्व हिन्दी साहित्य नहीं था । किन्तु वह साहित्य नितान्त ही नगण्य था । यह बात कहना अन्याय पूर्ण नहीं होगा कि एकमात्र चाँद कवि रचित 'पृथ्वीराज रासो' को छोड़ उस युग में और कोई उल्लेखनीय ग्रंथ की रचना नहीं हुई थी । पृथ्वीराजरासो को शुद्ध हिन्दी काव्य कहा जाए या नहीं इस विषय में भी संदेह है किन्तु रामानन्द की प्रेरणा से हिन्दी साहित्य में नवजीवन का जो आवेग दिखाई देता है उसका

प्रभाव आज भी धूमिल नहीं हुआ है। रामानन्द के पूर्ववर्ती सभी धर्मनायक गणों ने एक मात्र संस्कृत भाषा में ही अपने भावों को व्यक्त करते थे। रामानंद ने ही सर्वप्रथम संस्कृत का तर्जन कर मातृभाषा हिन्दी को धर्म प्रचार के वाहन रूप में स्वीकार किया। उस समय यह कितना दु:साहसिकता तथा दूरदर्शिता का कार्य था आज उसे अनुभव करना कठिन है। इस कार्य में एकमात्र ब्राह्मण्य शास्त्रीय विधान की उपेक्षा कर ब्राह्मण शूद्र के सामाजिक समता स्वीकार के कार्य के साथ तुलना की जा सकती है, साहित्य रूप में इनका मूल्य अधिक नहीं है किन्तु धर्म प्रचार के बाह्य रूप में स्वीकार कर हिन्दी को उन्होंने जो मर्यादा प्रदान की उसका महत्त्व अपरिसीम है। उस समय से रामानंदी सम्प्रदाय व उसकी समस्त शाखा-प्रशाखा ने तो हिन्दी का आश्रय लिया ही, रामभक्ति को कृष्ण भक्ति आदि अन्यान्य धर्म गुरु भी हिन्दी को समृद्ध बनाने के कार्य में व्रती हुए। फलस्वरूप हिन्दी भाषा में समग्र उत्तर भारत व्यापी एक विपुल धर्म साहित्य निर्मित हुआ एवं हिन्दी काव्य व संगीत में देश का चित्त मुखरित हो उठा।

यथार्थ प्राणवान् धर्म के आविर्भाव के फलस्वरूप विभिन्न देशों में एवं विभिन्न युगों से नव साहित्य की सृष्टि हुई है। बुद्ध देव के धर्म प्रचार के फलस्वरूप विपुल पालि साहित्य का आविर्भाव इस प्रसंग में स्मरणीय है। बंगाल का मध्ययुगीन बृहत् वैष्णव साहित्य जो हमारे लिए गौरव की वस्तु बनी हुई है वह भी चैतन्य परिचालित धर्मान्दोलन का फल है। यह बात नहीं थी कि यूरोप में मार्टिन लुथर के संस्कार-आन्दोलन के फलस्वरूप लैटिन भाषा का स्थान च्युत कर केवल जर्मन भाषा ही साहित्य वाहन के पद पर अधिरूढ़ हुई है वरन् अंग्रेजी, फारसी आदि अन्यान्य भाषाएँ भी नव प्राणों से उज्जीवित हो उठी थी, और आधुनिक काल में बंगाल में राममोहन के संस्कार प्रचेष्टा से बंगाल साहित्य में जिस नव शक्ति का संचार हुआ उसका प्रभाव आज भी सक्रिय है।

रामानंद प्रवर्तित रामभक्ति धर्म हिन्दी साहित्य में जिस प्राण चांचल्य का संचार करता है, उसकी चरम परिणति तुलसीदास (१५३२-१६२४) की रचनाओं में देखी जा सकती है। रामानंद की तरह तुलसीदास भी कन्नौजिया ब्राह्मण थे। रामानन्द के अधतन षष्ठ धर्माचार्य नरहरि दास उनके गुरु थे। उनके जीवन का अधिकांश समय रामानंद के कर्मक्षेत्र काशीधाम में व्यतीत हुआ था। कालान्तर में

रामभक्ति के धर्म ने उनके हृदय को गहराई से स्पर्श किया। फलस्वरूप उनके हृदय की एकनिष्ठ भक्ति 'रामचरित मानस' काव्य (रचनाकाल (१५७५) में अपूर्व सौन्दर्य के संग विकसित हो उठी। काव्य सौन्दर्य एवं महत् नैतिक आदर्श के विचार से तथा जातीय जीवन में प्रभाव विस्तार की गंभीरता में, तुलसी रामायण के साथ तुलना हो सके ऐसा कोई द्वितीय ग्रंथ पृथ्वी के साहित्य में है या नहीं सन्देह है।—शायद एकमात्र वाल्मीकि-रामायण के साथ ही राम चरित मानस की तुलना हो सकती है। विशुद्ध काव्य सौन्दर्य के विचार से तुलसी रामायण का स्थान कहाँ है इस संबंध में पूर्वोल्लिखित हिन्दी साहित्य के इतिहास से एक अंश (पृ. ५६) को उद्धृत करना ही हमारे लिए यथेष्ट होगा—

The Ramayan of Tulsi is undoubtedly a great poem. worthy to rank amongst the great classical masterpieces of the world's literature.

केवल काव्य सौन्दय ही नहीं, नैतिक आदर्श के महत्त्व से भी वह काव्य वाल्मीकि रामायण का योग्य उत्तराधिकारी है। इस प्रसंग पर उक्त इतिहास ग्रंथ (पृ. ५३) में कहा गया है—

One most commendable feature of the Ramayan is its pure and lofty moral tone, in which it compares very favourably with literature put forth by some of the dovotees of Krishna,

नैतिक आदर्श का महत्व केवल तुलसी रामायण का ही वैशिष्ट्य नहीं; वस्तुत: यह राम भक्ति के धर्म का ही एक विशिष्ट लक्षण है।

अब इस ग्रंथ के धर्मगत प्रभाव पर विचार किया जाए, 'रामचरितमानस' को एक साथ उच्चांग काव्य व महत् धर्मग्रंथ के रूप में वर्णन करना अत्युक्ति नहीं है। शुद्ध धर्म ग्रन्थ के रूप में इसको 'भगवद्गीता' व 'बाईबल' के समान ही स्थान दिया जा सकता है। तुलसीदास स्वयं साधु थे; किन्तु उन्होंने धर्म प्रचार की भूमिका ग्रहण नहीं की थी, किसी धर्म सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा भी नहीं की थी जबकि उत्तरी भारत में उनका प्रभाव किसी धर्म प्रचारक से कम नहीं है एवं 'रामचरितमानस' काव्य रचना का ऐतिहासिक प्रभाव भी नवधर्म प्रवर्तन की तरह ही गहरा व सुदूर

प्रसारी है । इस विषय पर Keay साहब का यह मन्तव्य उद्धृत किया जा सकता है—

Amongst all classes of the Hindu community of North India.....it is today every where appreciated and venerated whether by rich or poor, old or young, learned or unlearned, and it has sometimes been called the 'Bible' of the Hindu people of North India.

Tulsidas founded no sect,...but there is no doubt the Ramayan has been the most potent factor in making Vaishnavism the accepted cult of the vast majority of the Hindus in North India today."

—History of Hindi Literature (P. 53 & P 56.)

वस्तुतः तुलसी रामायण ने रामभक्ति के धर्म को केवल बहुजन ग्राह्य ही नहीं बनाया था, उसको चिरन्तनता भी प्रदान की थी । फलस्वरूप आज भी उत्तर भारत के अधिकांश लोग इसी धर्म को स्वीकार करते हैं । इस प्रकार रामानन्द प्रवर्तित रामभक्ति का धर्म कबीर व तुलसीदास की साधना के स्पर्श से क्रमशः महत्त्व का अधिकारी हो आधुनिक काल को भी प्रभावित करता है ।

(६)

आधुनिक काल में महात्मा गाँधी ने इस महान् धर्म को अपने जीवन में एकनिष्ठ रूप से स्वीकारा था एवम् उनके पवित्र चरित्र के संस्पर्श में आकर यह धर्म अधिक महिमा मण्डित हो उठा । वस्तुतः महात्मा गाँधी को भी इस रामभक्ति के धर्म का सर्वशेष व सर्वश्रेष्ठ गुरु रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए । रामानन्द, कबीर व तुलसीदास के धर्म को ही उन्होंने स्वयं की चरित्र महिमा से उज्ज्वलतर बनाया । भक्ति की गहराई एवम् नैतिक आदर्श की निर्मलता, रामायत धर्म की इन दोनों प्रधान विशिष्टताओं ने महात्मा गांधी के चरित्र में पूर्णता पाई । दूसरी विशेषताएँ भी उनमें सार्थक हो उठी थीं । पहले ही कहा गया है कि रामभक्ति का धर्म सन्यास के अनुकूल नहीं है, कठोर दुःख के बीच भी चरम कर्तव्यनिष्ठता ही उस धर्म का प्राण है । महात्मा गाँधी में भी इस त्याग व कर्म का अपूर्व मिलन

संघटित हुआ था। इस धर्म की एक और विशेषता यह है कि ब्राह्मण शूद्र निर्विशेष सभी मनुष्यों की समता का स्वीकार एवम् हिन्दू मुसलमान निर्विशेष सर्वधर्मों का समन्वय साधन। महात्मा जी इन दोनों नीतियों की प्रतिष्ठा के लिए प्राण विसर्जन करने को भी प्रस्तुत थे एवम् इस प्रयास में ही शेष तक उनका जीवनावसान हुआ। स्मरणीय है कि मध्ययुगीन रामोपासकों की तरह उन्होंने भी ब्राह्मण-शूद्र, हिन्दू, मुसलमान सभी को सामाजिक क्षेत्र में समता देने की चेष्टा की थी। रामभक्ति का धर्म पण्डित समाज से बाहर विपुल जन साधारण के कल्याण के लिए ही निरन्तर सक्रिय रहा। इसलिए संस्कृत के स्थान पर हिन्दी को ही इस धर्म को वहन करने की मर्यादा मिली। आधुनिक युग में पण्डित समाज में संस्कृत का स्थान अंग्रेजी ने ले लिया इसलिए महात्माजी इस क्षेत्र में अंग्रेजी के स्थान पर जनसाधारण की भाषा हिन्दी को ही स्थान देने को आग्रही हुए थे। वस्तुत: रामायत धर्मान्दोलन की सभी विशेषताएँ ही महात्मा जी के चरित्र में उज्ज्वलतर रूप से प्रकाशित हुई।

अब शुद्ध धर्म के क्षेत्र में पूर्वगामी रामभक्तों के संग महात्मा जी की तुलना की जाए। रामानन्द व तुलसी दास के लिए राम विष्णु के अवतार थे, जो आदर्श चरित्र की उज्ज्वल महिमा से मण्डित थे। कबीर के लिए राम सर्वव्यापी निराकार ईश्वर के नामान्तर थे। महात्मा जी की रामभक्ति में इन दोनों का ही समन्वय है। वे राम के अवतारवाद में विश्वासी थे या नहीं इसमें सन्देह है किन्तु तुलसी वर्णित रामचरित्र के आदर्श ने उनके चित्त को सर्वदा ही आकर्षित किया। दूसरी ओर कबीर की तरह वे भी राम से भगवान को ही समझते थे। उन्होंने अपने जीवन के अन्त में जो बीज मंत्र देशवासियों को दिया—

रघुपति राघव राजा राम पतित पावन सीताराम।
ईश्वर अल्लाह तेरो नाम, सबको सन्मति दे भगवान।।

इसमें भी तुलसीदास व कबीर के आदर्श का समन्वय हुआ था। इस मंत्र की प्रथम दो पंक्तियों में तुलसीदास एवम् बाद की दो पंक्तियों में कबीर की वाणी ही प्रतिध्वनित होती है। तत्कालीन रामभक्ति धर्म में मूर्ति व मन्दिर का प्राधान्य न था। महात्मा जी ने भी कभी मन्दिर प्रतिष्ठा व मूर्तिपूजा की पोषकता नहीं की। साथ ही इस कार्य को कभी अकर्त्तव्य भी घोषित नहीं किया। इस विषय में महात्मा

जी के विचार स्वयं रामानन्द से तुलनीय है । मूर्तिपूजा की जगह रामनाम का जप ही इस धर्म के अनुसार भगवान की श्रेष्ठ आराधना है । इस नाम जप को महात्मा जी ने कितनी महत्ता के साथ स्वीकार किया था यह उनके स्वयं की उक्ति से ही स्पष्ट हो जाता है—

"Though my reason and heart long ago realised the highest attribute and name of god as truth, I recognise truth by the name of Ram. In the darkest hour of my trial that one name saved me and is still saving me. It may be the association of childhood, it may be fascination that Tulsidas has wrought on me. But the potent fact is there.

When a child, my nurse taught me to repeat Ramanama whenever I felt afraidor miserable and it has been second nature with me with growing knowledge and advancing years. I may ever say that the word is in my heart, if not actually on my lips all the twenty four hours. It has been my saviour and I am ever stayed on it.

—The Mind of Mahatma Gandhi,

—By Prabhu and Rao p. 32-33

इससे समझा जाता है कि राम नाम नें किस गहराई से महात्मा जी की जीवन सत्ता में अनुप्रवेश किया था और हम जानते हैं कि जीवन के अन्तिमक्षण तक वे रामनाम का ही उच्चारण कर गए थे । रामभक्ति के धर्म का यही रूप महात्मा जी के जीवन एवम् मृत्यु में चरम सार्थकता को प्राप्त करता है ।

(७)

खेद का विषय है कि बंगाल धर्म के इस कल्याणकारी प्रभाव से वंचित रहा । राम माहात्म्य के प्रभाव से बंगाल में कभी भी थोड़ी भी स्वीकृति नहीं प्राप्त की, ऐसा नहीं । बंगला साहित्य में युगों से रामकाव्य रचित हुआ; रामायण गान एवम् कथावाचन आदि के द्वारा राम कहानी घर घर में प्रचारित हुई किन्तु रामादर्श

का प्रभाव कभी भी काव्य व कहानी के क्षेत्र से उन्नीत होकर हमारे चारित्र्य नीति व धर्म को प्रेरणा देने का सुयोग नहीं पा सका। शायद वह प्रभाव कुछ आया था जिसके फल स्वरूप हम अभी भी अपवित्रता व अकल्याण के निवारणार्थ रामनाम का स्मरण करते हैं। वस्तुत: बंगाल में राम के चारित्र्य आदर्श की अपेक्षा राम के नाम माहात्म्य ने ही प्राधान्य पाया था, चारित्र्य आदर्श अनुसरण के कठिन पथ का परिहार कर नामोच्चारण के सहज पथ को ही बंगालियों ने मुक्ति प्राप्ति का सहज उपाय मान लिया था इस सहजिया मुक्ति मार्ग की बात कृतिवासी रामायण में रत्नाकर दस्यु के उद्धार प्राप्ति की कथा में वर्णित है—

मरा मरा बलिते आइल रामनाम।
पाइल सकल पापे दस्यु परित्राण॥

तुलाराशि येमन अग्नि ते भस्म हय।
एक बार राम नामे सर्वपापक्षय॥

—संसद संस्करण (१९५७) पृ. ४

कृत्तिवासी रामायण में अन्यत्र (किष्किन्धा काण्ड) रामनाम माहात्म्य कीर्तन के सम्बन्ध में कहा गया है—

शमन-दमन रावण-राजा रावण-दमन राम।
रामन-भवन ना हय गमन ये लय रामेर नाम॥....

मृत्युकाले यदि नर रामचलि जके।
विमाने चड़िया याम सेइ देव लोके॥

राम नाम स्मरणे यमेर दाय एड़ि।
भवसिन्धु तारेबारे रामपद तटी॥

—संसद संस्करण (१९५७), पृ. १५७

रामनाम का शरण लेकर मृत्यु से बचकर देवलोक में जाने का एक सहज उपाय भी उद्‌भावित हुआ था, वह था-पुत्रादि के नाम करण में राम शब्द का प्रयोग, जिससे पुन: पुन: रामनाम के उच्चारण से 'सर्व पापक्षय' होकर परलोक का पथ निष्कण्टक होता है। रामप्रसाद सेन, रामनिधि गुप्त, रामराम बसु, रामबसु, राममोहन

राय, दाशरथि राय, आदि के नाम का स्मरण करने से इस बात की सार्थकता समझी जा सकती है । इस प्रकार बंगालियों ने राम के चारित्र्य माहात्म्य का वर्णन कर उसके नाम माहात्म्य का आश्रय लिया था । यह बंगालियों के लिए कल्याणकारी नहीं हुआ ।

केवल इतना ही नहीं, बंगाल में रामनाम के तात्पर्य में भी विकृति हुई । राम का आदर्श महत्त्व का ही सूचक है किन्तु बंगला में स्थल विशेष पर यह विकृत हो महत्त्व के स्थान पर बृहत् को ही सूचित करता है । इससे भी प्रतीत होता है कि राम का महत् आदर्श हमारे जातीय चित्त में गहराई से प्रवेश नहीं कर पाया था । इसीलिए रवीन्द्रनाथ ने आक्षेप कर कहा था कि यह हमारे देश का दुर्भाग्य है कि बंगाल में राम का आदर्श प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं कर पाया ।

इससे हमारे चरित्र सम्पदा में अभाव दिखाई दिया था । आज यदि हम रामभक्ति प्रणोदित महात्मा जी के चारित्र्य महिमा से अपने जातीय जीवन को कुछ अंशों में संजीवित कर सकें तो यह हमारे लिए आक्षेप का विषय नहीं रह पाएगा ।

रामराज्य

महात्मा गांधी जी ने जीवनभर भारतवर्ष में रामराज्य प्रतिष्ठा की साधना की एवम् इसी साधना में उन्होंने जीवन त्यज दिया। यह रामराज्य क्या है इस पर विचार करना आवश्यक है। रामराज्य का अर्थ है—आदर्श राज्य। किन्तु वह आदर्श क्या है यही विचारणीय है।

यह बात नहीं कि महात्मा जी ने ही प्रथम रामराज्य का उल्लेख किया हो। रामराज्य का आदर्श भारतवर्ष का चिरन्तन आदर्श है। उस आदर्श के दो पहलू हैं। एक है—उस राज्य के प्रतिष्ठाता व परिचालक रामचन्द्र का चारित्रिक पहलू, क्योंकि आदर्श राज चरित्र के बिना आदर्श राज्य नहीं हो सकता और दूसरा है उसके राज्य शासन का लक्ष्यगत पहलू। इसलिए रामराज्य की आलोचना इन दोनों दृष्टिकोणों से विचारणीय है।

भारतवर्ष के इतिहास में जिन दो चरित्रों ने उसके जातीय जीवन को सर्वाधिक प्रभावित किया है वे दो हैं—श्री रामचन्द्र व श्री कृष्ण। इन दोनों चरित्रों ने भारतवर्ष की कल्पना को इस प्रकार उद्दीप्त किया कि भारतवर्ष ने उन दोनों को जगत् के पालनकर्त्ता विष्णु के श्रेष्ठतम अवतारों के रूप में पूजार्घ्य दिया, और भारतवर्ष का वैष्णव सम्प्रदाय भी दो प्रधान शाखाओं में विभक्ति हुआ। एक शाखा कृष्ण भक्त और दूसरी शाखा रामभक्त कहलाई। किन्तु आश्चर्य की बात है कि इन दोनों महाचरित्रों का प्रभाव हमारे जातीय जीवन को दो सम्पूर्ण विपरीत दिशाओं की ओर परिचालित करता है। रामचन्द्र का चरित्र भारतवर्ष को चरम नैतिक महत्त्व की ओर प्रेरित करता है और श्री कृष्ण का चरित्र उसके विपरीत आकर्षित करता है। वर्तमान प्रबन्ध में इस विषय पर विस्तृत आलोचना निरर्थक है। सुविख्यात इतिहासवेत्ता रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर का अभिमत उद्धृत करने से ही उक्त

मंतव्य की सार्थकता प्रतिपन्न होगी। वैष्णव रामायत सम्प्रदाय के प्रतिष्ठाता रामानन्द के प्रसंग में उन्होंने कहा है—

A very important reform made by him was the introduction of the purer and more chaste worship of Rama and Sita instead of Krishna and Radha.

—Vaishnavism. Saivism etc, (A 66)

अन्य प्रसंग में उन्होंने कहा है—

The Rama cultus represents a saner and purer form of Hindu religious thought than Radha-Krishnaism.

—Vaisnavism, Saivism, (P 87)

उपनिषद् व महाभारत के महत् कृष्ण चरित्र का परवर्ती काल में जो विकार हुआ, उसको इतिहास का परिहास नहीं तो और क्या कहा जा सकता है ? इसीलिए बंकिमचंद्र को कृष्ण-चरित्र के कलंक मोचन के दु:साध्य साधन में व्रती होना पड़ा किन्तु रामचन्द्र का चरित्र इतिहास में चिरकाल ही निष्कलंक रहा, इस प्रसंग में रवीन्द्रनाथ का अभिमत उद्धृत योग्य है—

"इस बात को स्वीकार करना ही होगा कि पश्चिम में, जहाँ रामायण की बात साधारण में बहुल परिमाण में प्रचलित है वहाँ बंगाल की अपेक्षा पौरुष की चर्चा अधिक है...रामायण कथा में एक ओर कर्त्तव्य का दुरूह काठिन्य है तो दूसरी ओर भाव का अपरिसीम माधुर्य सम्मिलित है, उसमें दाम्पत्य, सौभ्रात्र, पितृभक्ति, प्रभुभक्ति प्रजावात्सल्य आदि मनुष्य के जितने प्रकार के उच्चांग के हृदय बन्धन है उनका श्रेष्ठ आदर्श प्रस्फुटित हुआ है। उसमें सर्वप्रकार के हृदय वृत्ति को महान धर्म नियम के द्वारा पग पग पर संयत करने का कठोर शासन प्रचारित है। पूर्णरूप से मनुष्य को मनुष्य बनाने की और किसी देश के साहित्य में नहीं है। बंगाल की मिट्टी पर वहीं रामायण कथा हर-गौरी व राधाकृष्ण की कथा पर सिर नहीं उठा पाया। यह हमारे देश का ही दुर्भाग्य है। राम को जिन्होंने युद्धक्षेत्र व कर्मक्षेत्र में

नर देवता के आदर्श के रूप में ग्रहण किया है उनका पौरुष, कर्त्तव्यनिष्ठा व धर्मपरता का आदर्श हमारी अपेक्षा उच्चतर है ।" ग्राम्य साहित्य, लोकसाहित्य ।

सर्वांगीण मनुष्यत्व के इस आदर्श को जीवन के प्रारम्भ में महात्मा गांधी ने ही वरण कर लिया था । उनके चरित्र में जो पौरुष, कर्त्तव्यनिष्ठा, व धर्मपरायणता आदि का हम जो परिचय पाते हैं वह अनेकांश में ही उनकी गहरी रामायण प्रीति का फल है । तुलसीदास के रामचरित मानस ने उन पर विशेष प्रभाव डाला था यह बात उनकी स्वयं की उक्ति से ही जानी जाती है । यदि वङ्किम चन्द्र कृष्ण चरित को कलंकमुक्त कर पुनःप्रतिष्ठा के व्यर्थ साधना में व्रती न होकर रामचरित्र को आदर्श रूप में प्रस्तुत करते तो बंगाली जाति पर अधिक उपकार होता ।

राम चरित्र में भारतवर्ष मानव जीवन के किस आदर्श को प्रत्यक्ष करना चाहता है इसका परिचय पाने के लिए पहले ही वाल्मीकि रामायण का उल्लेख करना होगा, इस सम्बन्ध में रवीन्द्रनाथ का अभिमत यह है—

"रामायण में देवता ने स्वयं को छोटा बनाकर मानव नहीं किया वरन् मनुष्य ही निज गुण से देवता हो उठता, मनुष्य के चरमादर्श की स्थापना के लिए भारत के कवि ने महाकाव्य की रचना की । एवं उस दिन से आज तक मनुष्य के इस आदर्श चरित्र वर्णना का भारत की पाठक मण्डली परमाग्रह से पाठ करती आ रही है ।"

—रामायण; प्राचीन साहित्य

मानव में आदर्श चरित्र की स्थापना ही रामायण का लक्ष्य है । यह बात रामायण की भूमिका में निहित है । वाल्मीकि देव ऋषि नारद से पूछते हैं कि पृथ्वी के आदर्श नर चरित्र कौन है—

'कोन्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान् ।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः ।

चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः ।
विद्वान् कः कः समर्थश्च कश्चैकप्रियदर्शनः ॥

आत्मवान् को जितक्रोधो द्युतिमान् कोऽनसूयकः ।
कस्य विभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे ॥'

—आदिकाण्ड, १/३-४

शेषांश रवीन्द्रनाथ की भाषा में ही कहता हूँ—

कह मोरे, सर्वदर्शी हे देवर्षि, तार पूज्य नाम ।
नारद कहिला धीरे—"अयोध्यार रघुपति" राम ।

[कहो मुझे सर्वदर्शी हे देव ऋषि, उसका पुण्य नाम, नारद ने कहा धीरे-'अयोध्या के रघुपति' राम ।]

—भाषा ओ छन्द, काहिनी

क्या यह चरित्र महिमा ही महात्मा जी के चरित्र में प्रतिफलित नहीं हुई थी ? 'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी' रामायण में नारद ऋषि राम को 'धर्मज्ञ' सत्यसंघश्च प्रजानां च हिते रतः' कहकर वर्णित करते हैं । यही वर्णना क्या सम्पूर्ण रूप से महात्मा जी के संबंध में प्रयोज्य नहीं है ? वस्तुतः यह चारित्रिक आदर्श वाल्मीकि से कालिदास-भवभूति-कृत्तिवास-तुलसीदास आदि के भीतर से वर्तमान काल तक आया है एवं अब यह महात्मा जी के भीतर प्रत्यक्ष रूप में मूर्त हुआ । है । 'वज्रादपि कठोराणि मृदुनि कुसुमादपि' भारतवर्ष के कवि कल्पित आदर्श चरित्र के इन दो विपरीत गुणों का समावेश क्या गाँधी चरित्र में प्रतिफलित नहीं हुआ ?

(२)

यही राम राज्य के नायक चरित्र का आदर्श है । जिस राज्य की आदर्शावस्था भारतवर्ष की कल्पना में उदित हुआ था, वाल्मीकि-रामायण से उसका थोड़ा परिचय दिया जा सकता है—

पायलामास चैवेमाः पितृवन्मुदिताः प्रजाः ।
अयोध्याधिपतिः श्रीमान् रामो दशरथात्मजः ॥

प्रहृष्टमुदितो लोकस्तुष्टः पुष्टः सुधार्मिकः ।
निरामयो ह्यरोगश्च दुर्भिक्षभयवर्जितः ॥

न पुत्रमरणं केचिद् द्रक्ष्यन्ति पुरुषाः क्वचित्।
नार्यश्चाविधवा नित्यं भविष्यन्ति पतिव्रताः ॥

—रामायण, आदिकाण्ड, १/९०-९२

'रामचन्द्र प्रजा का पिता की तरह पालन करते थे, राज्य में दुर्भिक्षभय, रोग एवं अकाल मृत्यु नहीं थी। प्रजागण भी हृष्ट पुष्ट, संतुष्ट एवं धर्म परायण थे।'

आदर्शराज्य की इस कल्पना ने भारतवर्ष के चित्र को कई शताब्दियों से अधिकृत कर रखा था, तुलसीदास के रामायण (उत्तरकाण्ड) में राम राज्य का आदर्श और भी परिणति प्राप्त करता है। उसका भी संक्षिप्त परिचय दिया जा सकता है।—

राम राज बैठे त्रयलोका, हरषित भयउ गयउ सब सोका ॥
बैर न करहिं काहु सन कोई। राम प्रताप विषमता खोई ॥

—रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, ४३/४

'राम के राजा होने पर त्रिलोक में हर्ष उपस्थित हुआ, सब शोक-दुःख दूर हो गए; राम के प्रताप से सब वैषम्य के मिट जाने पर कोई किसी से वैर नहीं करता।'

अल्प मृत्यु नहिं कवनिहुँ पीरा, सब सुन्दर सब विरुज शरीरा ॥
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना ॥

—रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, ४४/३

'अकाल मृत्यु नहीं रही; कोई पीड़ा भी नहीं रही; सभी सुंदर व नीरोग हुए, कोई दीन दरिद्र व दुःखी नहीं रहा, कोई अबोध या लक्षणहीन भी नहीं रहा।'

सब निर्दम्भ धर्मरत पुनी। नर अरू नारि चतुर सब गुनी।
सब गुणज्ञ पण्डित सब ज्ञानी। सब कृतज्ञ नहिं कपट सयानी ॥

—रामचरित मानस, उत्तरकाण्ड, ४४/४

सब दंभहीन व धर्मरत हुए; सब नर नारी चतुर व गुणी हुए; सभी गुणज्ञ पण्डित व ज्ञानी हुए; सभी कृतज्ञ, कोई कपट न शठ नहीं रहा।

अवध पुरी बासिन्हकर, सुख सम्पदा समाज।
सहस शेष नहि कहि सकहि, जहँ नृप राम विराज ॥'

—रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, ४९/५

'जहाँ राम राज्य विराजमान है, उस अयोध्या पुर वासियों के सुख सम्पद् की बात सहस्त्र शेषनाग भी वर्णित नहीं कर सकते ।'

रामचरितमानस काव्य में रामराज्य का सुविस्तृत वर्णन है किन्तु उद्धृत चारों श्लोकों से ही उसके सार मर्म का परिचय मिलता है इस संक्षिप्त विवरण से समझा जा सकता है कि रामराज्य का उज्ज्वल चित्र भारतवर्ष की कल्पना को किस तरह उद्दीप्त करता है । इसी कल्पित चित्र को वास्तव रूप दान की साधना में महात्मा जी व्रती हुए थे । उनकी कल्पना के रामराज्य के स्वरूप को समझने के लिए तुलसीदास द्वारा वर्णित राम राज्य के साथ घनिष्ठ रूप से परिचित होना आवश्यक है तुलसी रामायण के रामराज्य वर्णन के प्रथम श्लोक में ही महात्मा जी के आदर्श सम्पूर्ण रूप से अभिव्यक्त होते हैं—

वयरु न कर काहू सन कोई ।
रामप्रताप विषमता खोई ॥

'राम के प्रभाव से मनुष्य को मनुष्य के साथ वैषम्य मिट जाने पर कोई किसी से वैराचरण नहीं करता । इस एक मात्र उक्ति में ही महात्मा जी के रामराज्य का चित्र उज्ज्वल होता है । वैरहीन वैषम्यहीन राज्य ही रामराज्य है । आजकल श्रेणी हीन समाज की बात नित्य ही सुनायी देती है किन्तु साम्यवादी प्रोक्त यह आदर्श समाज वैरहीन नहीं हैं क्योंकि वैर साधन ही इस समाज प्रतिष्ठा का उपाय है; श्रेणी संग्राम बैर निर्यातन पूर्ण समाज कभी भी वैरहीन नहीं हो सकता । यह वैरमय साम्य एकमात्र रामायण कल्पित तथा महात्मा जी के अभीष्ट राम राज्यादर्श के सम्पूर्ण विपरीत हैं । रामराज्य की प्रतिष्ठा वैरहीन साम्य से परे हैं । इस राज्य में एक श्रेणी के पतन से और एक श्रेणी का उत्थान नहीं होता; इस राज्य की प्रतिष्ठा सभी के कल्याण समता पर निर्भर हैं । यह कल्याण साम्य ही यथार्थ साम्य है; अर्थ साम्य ही एकमात्र साम्य नहीं एवं वह कल्याण प्रसूत भी नहीं हो सकता है । जिस समाज में सभी का समभाव से कल्याण होता है, अभ्युदय घटित होता है, वही समाज

आदर्श समाज हैं। यह कल्याण साम्यमय समाज ही 'सर्वोदय समाज' है। कहना न होगा कि जिस राज्य में इस सर्वोदय समाज की प्रतिष्ठा है उसी का नाम रामराज्य हैं। वैरहीन साम्यवाद के द्वारा ही इस सर्वोदय समाज तथा रामराज्य की प्रतिष्ठा सम्भव हैं और महात्मा जी इस वैरहीन साम्यवाद के प्रवर्तक थे।

कल्याण साम्य पर प्रतिष्ठित रामराज्य में शक्ति प्रयोग, पीड़न तथा युद्ध विग्रह का स्थान नहीं था। तुलसी रामायण में हैं—

दण्ड यतिनकर भेद जहँ, नर्तक नृत्य समाज।
जीते मनहिं सुनिय अस, रामचन्द्र के राज॥

—रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, ४५/५

अर्थात् रामचन्द्र के राज्य में दंड प्रयोग का प्रयोजन न रहने पर राजा के हाथ में दण्ड नहीं था, दंड केवल यति के हाथ में था; भेदनीति प्रयोग की आवश्यकता न रहने पर वह केवल नर्तक समाज के हाथों में अभिनय की वस्तु रूप में परिणत हो गया था और केवल मन के विजय को छोड़ अन्य किसी विजय का प्रयोजन नहीं था।

महात्मा जी कल्पित रामराज्य व सर्वोदय समाज में भी भेद दण्ड जय आदि साधारण राष्ट्रनीतिगत शक्ति प्रयोग की कोई आवश्यकता नहीं थी। इस शक्ति प्रयोग हीन साम्य की निष्ठा ही उनके जीवन की साधना थी।

(३)

वाल्मीकि से तुलसीदास तक कई शताब्दियों से भारतवर्ष ने जिस आदर्श रामराज्य की कल्पना की थी, उसने महात्मा जी में भी पूर्ण परिणति को प्राप्त किया। महात्मा के पास वह आदर्श केवल कल्पना की वस्तु ही नहीं रही, वह कल्पना उनकी साधना में परिणत हो गई एवं उसी साधना की वेदी पर उन्होंने अपने जीवन को उत्सर्ग किया। इस कल्पना व साधना की सामग्री को उन्होंने 'India of my dreams' कहकर वर्णित किया है। उन्होंने अपने का जो चित्र अंकित किया, उसके साथ वाल्मीकि व तुलसीदास वर्णित आदर्श राज्य की तुलना करने से उनके राम राज्य का अर्थ स्पष्ट हो जाता है।

I shall work for an India in which the poorest shall feel that it is their county in whose making they have an effective voice, an India in which their shall be no high class and low class of people; an India in which all communities shall live in perfect harmony...

This is the India of my dreams.

यही है दीन दु:खहीन एव वैरहीन व वैषम्यहीन नीति पर प्रतिष्ठित सर्वोदय समाज का चित्र। इसके साथ वाल्मीकि व तुलसीदास के रामराज्य वर्णन की तुलना करने से स्पष्ट हो जाता है कि इन दोनों में कोई पार्थक्य नहीं है।

महात्मा जी के **मेरे सपनों का भारत** का थोड़ा और परिचय उद्धृत कर रहा हूँ—

Since we shall be at peace with all the rest of the world, neither exploiting nor being exploited, we should have the smallest army imaginable.

इस आदर्श भारतराष्ट्र में तुलसी वर्णित राम राज्य की तरह ही राजदण्ड यति करधृत होगा; भेद नीति अभिनय की वस्तु होगी विजय केवल मनुष्य मन पर ही होगी।

महात्मा जी के सपनों का आदर्श एक रूप में वाल्मीकि व तुलसीदास की कल्पना का अतिक्रमण कर गया था, इन दोनों कवियों की कल्पना स्वभावत: ही भारतवर्ष की सीमा में आबद्ध थी किन्तु महात्मा जी के ध्यान की परीधि विश्व-व्यापि थी—

I would like to see India free and strong so that she may offer herself an willing and pure sacrifice for the betterment of the world. India's freedom must revolutionize the world's out look upon peace and war....

I want the freedom of my country so that other countries may learn something from my feal

country, so that the resources of my country might be utilized for the benefit of mankind...

I want India's rise so that the whole world may benefit I do not want India on the rain of other countries.

इस विश्वोदय का आदर्श स्वभावत: ही वाल्मीकि व तुलसीदास के लिए कल्पनातीत था । आधुनिक युग में अवश्य ही विश्वव्यापी आदर्श राष्ट्र की स्थापना की कल्पना में अभिनवत्व कुछ नहीं है । विश्वव्यापी श्रेणीहीन समाज प्रतिष्ठा की बात साम्यवादियों के द्वारा दीर्घ काल से ही घोषित हो रही हैं किन्तु इस श्रेणीहीन विश्व समाज की प्रतिष्ठा का आदर्श बैरहीन व अविरोध की नीति को स्वीकृति नहीं देता वरन् वैर व विरोध के पथ को ही एकमात्र पथ रूप में मान लेता है । दूसरी ओर, महात्मा जी के ध्यानलब्ध विश्वोदय-समाज का आदर्श उनकी वैरहीन नीति की ही स्वाभाविक परिणति है ।

(४)

महात्मा गांधी की यह बैरहीन नीति व विश्वकल्याण व्रत पृथ्वी के किसी अन्यदेश के लिए अभूतपूर्व होने पर भी भारतवर्ष के इतिहास में सम्पूर्ण नूतन नहीं है । मौर्य सम्राट् प्रियदर्शी अशोक ने भारतवर्ष के बाहर तत्कालीन सभ्य देश समूहों के संग जिस मैत्री के सम्पर्क का स्थापन किया था एवं भारतीय राजकोष से अर्थव्यय कर उन देशों में चिकित्सा आदि हित कर्मों की जो व्यवस्था की थी, उसके मूल में भी यह वैरहीन नीति व विश्व कल्याण साधना की प्रेरणा थी । कल्याण कर्म द्वारा विश्वचित्त विजय की नीति को ही अशोक ने 'धर्म विजय' नाम से अभिहित किया । 'जितहु मनहिँ' 'जय करने की वस्तु केवल मनुष्य का मन ही है' तुलसीदास की यह सुन्दर कल्पना अशोक के राज्य काल में वास्तविक रूप में परिणत हुई थी । केवल इतना ही नहीं 'दंड जतिन्हकर' 'राजदण्ड यति कर घृत दण्ड में रूपांतरित हुआ था, तुलसी कल्पित रामराज्य का यह आदर्श भी अशोक के राज्य में वास्तविक हो उठता है । अंगुत्तर निकाय' में हम अशोक का जो वर्णन पाते हैं उसमें भी इस दण्डहीन शासन की बात स्पष्ट रूप से कही गई है—

चक्कबत्ती अहुं राजा जम्बुखण्डस्स इस्सरो—
अदण्डेन असत्थेन विजेय्य पठविं इमं
असाहसेन धम्मेन समेनमनुसासिया,
धम्मेन रज्जं कारेत्वा अस्मिं पठविमंडले।

अर्थात्—'जम्बुखण्ड के (भारतवर्ष) अधीश्वर एक चक्रवर्ती राजा थे, उन्होंने पृथ्वी को दण्डहीन शस्त्रहीन उपायों द्वारा जीत लिया एवं अपीड़न, वैषम्यहीनता व धर्म के द्वारा राज्यशासन किया।'

दूसरे राज्यों के साथ वैरहीन व स्वराज्य पीड़न हीनता ही अशोक के राज धर्म की मूल नीति थी। 'धम्मेन रज्जं कारेत्वा,' धर्म के द्वारा राजत्व किया था, इस उक्ति का तात्पर्य यह है कि अशोक धर्मराज्य प्रतिष्ठा में व्रती हुए थे। इस धर्म राज्य का आदर्श मात्र अशोक की कल्पना है ऐसा नहीं, यह वस्तुत: भारतवर्ष का ही चिरन्तन आदर्श है। युधिष्ठिर, जनक आदि आदर्श राजा के प्रसंग में बार बार ही धर्म राज्य की कल्पना भारतवर्ष के मन में दिखाई दी। धर्म राज्य का यही चित्र रामराज्य के स्वरूप में उज्ज्वल हो उठा है। वस्तुत: राम शासित धर्मराज्य का नाम ही राम राज्य है। भारतवर्ष में ध्यानलब्ध इस धर्म राज्य को वास्तव रूप देने के प्रयासी प्राचीनकाल में अशोक एवं आधुनिक काल में महात्मा गांधी हुए।

(५)

यहाँ तक रामराज्य का जो परिचय दिया गया है, वह भारतवर्षीय आदर्श-राज्य का मात्र एक पहलू है। यह रामराज्य की परिणति का चित्र है किन्तु उसके प्रयास का एक और पहलु भी है एवं उसका विशेष तात्पर्य भी है। यहाँ पर रामराज्य प्रतिष्ठा के उस विशेष तात्पर्य की बात को स्पष्ट करना आवश्यक है, कालिदास के मेघदूत काव्य के दो अंश है; पूर्वांश में वास्तव जगत की साधना की कथा है, उत्तरांश में कल्पलोक के सिद्धि की कथा है—उसी कल्पलोक का नाम अलका है, अभिज्ञानशाकुंतल नाटक में भी दो अंश है; यहाँ पर प्रथमांश में पार्थिव जगत् के मानव की प्रमत्तता व मुक्ति की तपश्चर्या का उसी प्रकार दो भाग हैं। आदर्श रामराज्य ही उत्तर भाग की कथा है; यह रामराज्य वस्तुत: स्वर्गीय सुषमा मण्डित कल्पलोक में अवस्थित हैं। इस कल्प राज्य प्रतिष्ठा के साधना की बात ही रामायण

के पूर्वभाग में है एवं यही रामायण कहानी का अधिकांश है। इस भाग में जो कर्तव्यनिष्ठा, त्याग स्वीकार, दु:ख वरण एवं कठोर परीक्षा की बात है वही राम चरित्र का महत्त्व है और यही चारित्रिक महत्ता ही राम राज्य की दृढ़ भित्ति है। इस चारित्रिक भित्ति की बात को स्मरण न रखने से आधुनिक काल के रामराज्य साधकों के वास्तविक महत्ता की उपलब्धि नहीं की जा सकती। केवल इतना ही नहीं, रामायण में रामचन्द्र के वास्तव साधना में जो गूढ़ द्योतना है उसका तात्पर्य भी उपलब्ध करना होगा।

इसमें सन्देह नहीं कि रामायण कहानी में एक अप्रकट रूपकात्मकता है। सीता का अर्थ हलरेखा है, राजा जनक की हलमुख से उसकी उत्पत्ति एवं धरणी के द्विधा भाग में उसकी परिणति हुई। राम का अर्थ रमणीयता है एवं वह रमणीयता कर्षणोत्पन्न शस्य श्यामलता जन्य है इसीलिए राम के शरीर का रंग नव दूर्वादल-श्यामल है। स्वाभाविकत: रामचन्द्र ही पाषाण कठिन अनुर्वर अभिशप्त अहल्या (हल चलाने अयोग्य) भूमि के उद्धार कर्त्ता है। लक्ष्मण का अर्थ कृषि जन्य सम्पदा है, लक्ष्मीवत्ता-जिसका प्रतीक धान का बालियाँ हैं। यही लक्ष्मण स्वभावत: सीता व राम के नित्य सहचर है। यह कल्पना शस्य श्यामल उत्तर भारत के ऋषि कवियों के लिए कुछ भी अस्वाभाविक नहीं कि हल रेखा के एक ओर शोभा और दूसरी ओर सम्पत्ति है।

भारतवर्ष की एक सीमा पर सीता व राम लक्ष्मण के लीला स्थल विदेह, कौशल की श्यामल भूमि है दूसरी ओर की सीमा पर पराक्रान्त राक्षसराज रावण का कीर्तिस्थल स्वर्ण लंका है। यहाँ पर एक और रूपक प्रच्छन्न है। भारतवर्ष के उत्तर में यक्ष राज्य तथा दक्षिण में रक्ष राज्य है। यक्षपुरी अलका धन सम्पत्ति के लिए प्रसिद्ध है, रक्षपुरी स्वर्ण लंका भी उसी के लिए प्रसिद्ध है किन्तु यक्ष तथा रक्ष में एक पार्थक्य है। यक्षों की धन सम्पत्ति लोभ व संचय का प्रतीक है किन्तु रक्षों के ऐश्वर्य में प्रताप व पीड़न शक्ति निहित है। राक्षसराज रावण के दस सिर तथा बीस हाथों में वही अति पीड़न शक्ति का प्रकाश है। वज्र विद्युतधारी देवता भी इसके आज्ञाधीन है। रावण नाम का भी यही अर्थ है—जो पीड़न के द्वारा लोगों से रव (आर्तनाद) कराता है। रावण शब्द का पूरा रूप 'लोक-रावण अर्थात् लोक पीड़क है। रावण के पुत्र मेघनाद नाम में भी रावण शब्द की द्योतना है। रावण का

सहोदर भाई विभीषण हैं, विभीषिका में ही पीड़न शक्ति का प्रकाश है । राक्षसों के अति शक्ति व प्रताप का उत्स स्वर्ण है- स्वर्ण की माया में मुग्ध करके राक्षस शक्ति मानव को मुग्ध करती है । यह स्वर्ण की शक्ति कुछ सृष्ट नहीं करती; स्वर्ण का बल दूसरे की सम्पत्ति का हरण कर ही स्फीत होता है परन्तु इस स्फीति में रमणीयता नहीं वीभत्सता है, इसीलिए रावण राम के विरोधी है—एक लोक पीड़क तो दूसरे लोक रंजक। इस विरोध के मूल में मायावी स्वर्ण मृग की क्रिया है जिसका वास्तविक नाम मारीच अर्थात् मरीचिका है । इस स्वर्ण मरीचिका की सहायता से मुग्ध व लुब्ध करके लंकाधिपति ने जब भारतवर्ष सीता का हरण कर राम व लक्ष्मण को विपन्न किया, तभी कल्याण के साथ अकल्याण का विरोध घटित हुआ । एक ओर धनमद स्फीत अपरिमेय पराक्रम है दूसरी ओर विरल सम्बल आत्म प्रत्यय की दृढ़ता है । यह सोचना अन्याय नहीं है कि राम रावण संग्राम की कहानी में यह बात घोषित होती है कि अन्त में पर स्वहारी लोक पीड़क शोषण शक्ति की पराजय एवं स्वावलम्बी लोक रंजक पोषण शक्ति की जय होती है ।

सीता व राम लक्ष्मण में जिस कल्याण शक्ति का प्रकाश हुआ है, महात्मा जी ने सम्पूर्ण जीवन उसी शक्ति को सम्बल मानकर युद्ध किया । भारतवर्ष के करोड़ों ग्रामवासी कृषक के हृत कल्याण का पुनरुद्धार ही उनकी साधना थी, उनके विरोधी पक्ष में वह शक्ति थी जिसने आधुनिक विज्ञान के बल से वज्र विद्युत को करायत कर उसकी सहायता से पर स्व शोषण कर नूतन स्वर्णलंका की प्रतिष्ठा की थी । इस नव लंकाधिपति ने अपने स्वर्णमय माया मृग के द्वारा मुग्ध व लुब्ध कर भारत की कृषि सम्पत्ति को सागर पार आकर्षित कर ले गया था । उसके पुनरुद्धार की साधना ही महात्मा जी के जीवन की मूल कथा थी । राम-रावण युद्ध को यदि रूपकार्थ मानना है तो यह बात स्वीकार करनी ही होगी कि महात्मा जी ने सम्पूर्ण जीवन राम के पक्ष में ही युद्ध किया । सीता उद्धार के दुःसाध्य साधना में वे सफलकाम हुए किन्तु अपने बहुकल्पित रामराज्य की प्रतिष्ठा का सूत्रपात नहीं कर पाए । तुलसी वर्णित रामराज्य की तरह महात्मा जी की ध्यान कल्पित रामराज्य भी हमारे लिए कल्प लोक की सामग्री ही बनी रही ।

राम राज्य व आधुनिक भारत

जिस रामराज्य की कल्पना ने कई शताब्दियों से भारतवर्ष के हृदय को मुग्ध कर रखा था, बीसवीं शताब्दी में महात्मा गांधी ने उसे कार्य क्षेत्र में रूप देने के प्रयास में अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित किया, किन्तु उसके पूर्व भारतवर्ष के सुदीर्घ इतिहास में कोई भी उस कल्पना को वास्तव रूपदान करने में व्रती नहीं हुआ, यहाँ तक की उसको साकार रूप देने की इच्छा भी नहीं जगी । जबकि सभी ने उस कल्पना को नाना काव्य में नाना भाषाओं में सम्पूर्ण हृदय से परिपुष्ट किया । इसका क्या कारण है वह विचारणीय है ।

किन्तु इसके पूर्व, राम राज्य की कल्पना भारतीय चित्त में कब और कैसे प्रथम दिखाई दी, इस प्रश्न का उत्तर देना अधिक आवश्यक है । सर्वजन आकांक्षीत दोष लेश शून्य आदर्श धर्मराज्य का नामांतर ही राम राज्य है यह बात बहुत पहले कही जा चुकी हैं । इस प्रकार के सर्वगुण सम्पन्न आदर्श धर्मराज्य के लिए आदर्श धर्मपरायण राजा की आवश्यकता हैं । भारतवर्ष के दो महाकाव्यों ने निष्कलंक महान् चरित्रों को देश के सम्मुख दो सर्वगुण सम्पन्न आदर्श राज चरित्र के रूप में उपस्थित किया—रामायण के आदर्श राजा रामचंद्र का चरित्र एवं महाभारत के धर्मराज युधिष्ठिर का चरित्र, यह प्रमाणित है कि रामायण-महाभारत की प्राथमिक अवस्था में रामचन्द्र व युधिष्ठिर का वर्तमान रूप नहीं था । यह रूप क्रमशः इन दोनों काव्यों में परवर्ती कालीन विभिन्न संस्करणों में अभिव्यक्त हुआ एवं वह भारतवर्ष की ऐतिहासिक व सामाजिक अवस्था के परिवर्तन के फलस्वरूप हुआ, मैंने अन्यत्र दिखाने की चेष्टा की है कि रामचन्द्र व युधिष्ठिर को आदर्श धर्म राज रूप में चित्रित करने का पहला सुस्पष्ट प्रयास दिखाई दिया धर्म विजेता प्रियदर्शी अशोक (२७२-३२ ई. पू.) के परवर्ती काल में एवं उन्हीं के प्रतिस्पर्धी रूप में । इतिहास के साक्ष्यों से जाना जा सकता है कि व्यक्तिगत रूप से बौद्ध धर्मानुरक्त

होने पर भी सब धर्मों के प्रति समदर्शिता ही प्रियदर्शी अशोक का राज धर्म था परन्तु उत्तर काल में मौर्य साम्राज्य और बौद्ध समाज के गौरव मय युग का अवसान होने पर अशोक का सत्य इतिहास जब विलुप्तप्राय होकर स्मृति मात्र रह गया उस समय के बौद्ध समाज ने अशोक की गौरव स्मृति को केवल दृढ़ता से याद ही नहीं रखा, अशोक को आदर्श मानकर अर्थात् आदर्श बौद्ध धर्म राज के रूप में कल्पना कर सांत्वना अनुभव करते रहे । इस आदर्श शायित बौद्ध धर्म राज अशोक के बहुत से चित्र पूर्वोक्त अंगुत्तर निकाय आदि बौद्ध साहित्य के विभिन्न विभागों में परिव्याप्त है । इसी की प्रतिक्रिया में ब्राह्मण समाज में ब्राह्मण्य धर्म निष्ठा व वर्णाश्रम धर्म के प्रतिपालक आदर्श धर्मराज-चरित्र रचना का प्रयास दिखाई दिया । इसी के फलस्वरूप महाभारत में धर्मराज युधिष्ठिर एवं रामायण में आदर्श नृपति रामचन्द्र का चरित्र रचित हुआ । कहा जा सकता है कि ब्राह्मण्य धर्म के प्रतिपालक रामचन्द्र का चरित्र रामायण के उत्तरकाण्ड रचना के समय रचित हुआ । उत्तरकाण्ड रचना के पूर्ववर्ती काल में रामचन्द्र ब्राह्मण्य आदर्श के अनुरागी नहीं थे इसके प्रमाण उपलब्ध है परंतु यह प्रसंग पहले ही यथास्थान पर आलोचित हो चुका है ।

अशोक के समय में भारतवर्ष के इतिहास में जो आदर्श राज्य दिखाई दिया था वही उत्तरकाल में बौद्ध समाज की कल्पना में आदर्श बौद्ध धर्मराज्य रूप में दिखाई दिया और उसी की प्रतिक्रिया में रामायण व महाभारत में ब्राह्मण्य धर्मशासित धर्मराज्य व रामराज्य दिखाई दिए यह बात कहना निरर्थक है कि ब्राह्मण्य धर्मशासित आदर्श समाज का रूप महाभारत से अधिक रामायण में ही स्पष्टतर रेखाओं एवं उज्ज्वलतर वर्णनों में चित्रित हुआ है । इसी के फलस्वरूप हम देखते हैं कि उत्तर कालीन संस्कृत साहित्य में धर्मराज युधिष्ठिर के चरित्र रचना के प्रयास अपेक्षाकृत विरल हैं । जबकि उस साहित्य में रामचरित्र तथा राम राज्य वर्णन के प्रयास में कभी भी विराम नहीं देखा गया । आदर्श रामराज्य की कल्पना ने भारतवर्ष के चित्त में इस प्रकार अधिकार जमा लिया कि जितने दिन बीतने लगे उतनी ही वह कल्पना गंभीर रूप से मनुष्य के हृदय को अभिभूत करने लगी, वह राम भी नहीं है, वह अयोध्या भी नहीं रहीं,—तब क्या दिन थे, और अब क्या दिन हैं, यह जैसे युग-युगान्तर से भारतवर्ष की हृदय उत्सारित वेदना की वाणी हैं ।

वाल्मीकि-रामायण के साथ कालिदास के रघुवंश की तुलना करने से इस बात की सार्थकता समझी जा सकती है । कालिदास की विभिन्न रचनाओं में जिस प्रकार विगत कालीन तपोवन आदर्श के लिए कवि के अन्तर का दीर्घनिश्वास सुनायी देता है—उसी प्रकार रघुवंश काव्य में केवल तपोवन नहीं, अतीत काल के आदर्श धर्म परायण राजा व धर्मराज्य के लिए कवि की वेदना का उच्छ्वास हमारे लिए अश्रुत नहीं रहता । 'क्व सूर्य प्रभवो वंश: क्व चाल्प विषया मतिः,' कालिदास की इस उक्ति को केवल विनय वचन मानने से उसका अभिप्राय पूर्ण ग्रहण नहीं किया जा सकता । प्राचीन काल के सूर्यवंशीय महामति राजाओं की तुलना में तत्कालीन अल्पमति राजाओं तथा प्रजाओं में कितनी अवनति घटित हुई है यह आक्षेप उक्त श्लोकांश में प्रच्छन्न रूप से विद्यमान हैं । कालिदास के अनुसार उद्धृत वर्णन में पाया जा सकता है—

सोऽहमाजन्मशुद्धानामाफलोदयकर्मणाम् ।
आसमुद्रक्षितीशानामानाकरथवर्त्मनाम् ॥

यथाविधिहुताग्नीनां यथाकामार्चितार्थिनाम् ।
यथापराधदण्डानां यथाकालप्रबोधिनाम् ॥

त्यागाय संभृतार्थानां सत्याय मितभाषिणाम् ।
यशसे विजिगीषूणां प्रजायै गृहमेधिनाम् ॥

शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम् ।
वार्धक्ये मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम् ॥

रघूणामन्वयं वक्ष्ये तनुवाग् विभवोऽपि सन् ।
तद्गुणैः कर्णमागत्य चापलाय प्रचोदितः ॥'

—रघुवंश १/५-९

अर्थात् जो जन्मावधि शुद्ध है, फल प्राप्ति तक जो कर्म निरत हैं; समुद्र पर्यन्त जिनका राज्य है एवं स्वर्ग पर्यन्त जिनकी रथगति हैं; शास्त्रीय विधान के अनुसार जो अग्नि में आहुति देते हैं, जो याचक की इच्छानुसार अभावों को पूर्ण करते हैं, जो अपराध अनुसार दण्डदान करते हैं एवं यथासमय जो जागृत होते हैं, जो त्याग के लिए अर्थ संचय करते हैं, जो सत्य के लिए मितभाषी हैं, जो यश के लिए जय

इच्छुक है एवं जिनका संतान प्राप्ति के लिए पत्नी ग्रहण है; जो शैशव में विद्याभ्यास में निरत थे, यौवन में विषयभोगी, वार्धक्य में मुनिव्रतावलम्बी एवं अन्तिम समय में योगबल से तनु त्यागी है—वाकसम्पक में दीन होने पर भी मैं उन रघुवंशीय राजाओं का गुण कीर्तन करूँगा क्योंकि उनकी गुणावली मेरे कानों में पहुँच कर मुझे उस चपलता में प्रणोदित करती है।

यह स्पष्ट है कि कालिदास के काल में सुदूर अतीत के रघुवंशीय राजा धर्म परायण आदर्श राजा रूप में चित्रित होते थे एवं उनका काल भी अति रमणीय प्रतीत होता था। कालिदास के अनुसार रघुवंशीय राजा जिस धर्मविधान को मानकर चलते थे, वह मन्वादि धर्म शास्त्र सम्मत था, यह बात उल्लेखित श्लोकों से भासित होता है, इस अनुमान का स्पष्ट समर्थन राजा दिलीप के चरित्र वर्णन में पाया जाता है—

भुले याम सबे जाति-अभिमान,
अवहेले देय आपनार प्राण,
एक हये याय मान-अपमान,
ब्राह्मण आर जाठ।

रेखामात्रमपि क्षुण्णादा मनोर्वर्त्मनः परम्।
न व्यतीयुः प्रजास्तस्य नियन्तुर्नेमिवृत्तयः॥

—रघुवंश १/१७

अर्थात्—'उनके (राजा दिलीप) नेतृत्व में उनके नियमानुवर्ती प्रजा मनु के समयावधि अनुसृत पथ से रेखा मात्र भी विचलित नहीं होते थे।

कालिदास के रघुवंश काव्य में राम राज्य के पूर्वाभास में जो मनुशास्त्र शासित धर्मराज्य का परिचय पाया जाता है, कहा जा सकता है कि वह पूर्ण रूप से ही ब्राह्मण्य आदर्शानुगत धर्मराज्य है। यह धर्मराज्य इतिहास स्वीकृत अशोक के सम्प्रदाय निरपेक्ष धर्मराज्य से जैसे पृथक् हैं, परवर्ती काल में बौद्ध साहित्य कल्पित अशोक के बौद्ध धर्मराज्य से भी वैसे ही पृथक् है। दूसरी ओर कालिदास का कल्पित धर्मराज्य अनेकांश में रामायण के उत्तरकाण्ड के वर्णन के अनुसार ही है और यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि उत्तर काण्ड, की तुलना में रघुवंश का

धर्मराज्य गहरे वर्ण से अंकित है एवं रघुवंश की तुलना में तुलसीदास का रामरज्य और भी गाढ़तम वर्ण से रंजित है ।

उत्तरकाण्ड, रघुवंश व रामचरितमानस-यह तीनों काव्य ही धर्मराज्य ब्राह्मण्य शास्त्र सम्मत वर्णाश्रम धर्म की आधारशिला पर प्रतिष्ठित है एवं वट उत्तरोत्तर और भी प्रगाढ़ रूप में वर्णित हुआ है । इस प्रतिक्रिया का सूत्रपात अशोकोत्तर युग में बौद्ध समाज के धर्मराज्य कल्पना के पूर्ववर्ती काल में हुआ, हम जानते हैं कि अशोक पूर्व युग के आदर्श रामायण में वर्णित आदर्श रामराज्य उत्तरकाल की तरह ब्राह्मण्य धर्मानुगत वर्णाश्रम पर प्रतिष्ठित था आदर्श रामायण के गुह चंडाल एवं उत्तर काण्ड के शंबुक के प्रति रामचन्द्र का आचरणगत पार्थक्य ही इन दोनों युगों की भारतीय समाज के आदर्शगत पार्थक्य को सूचित करता है—

आधुनिक काल में महात्मा गांधी जिस राम राज्य प्रतिष्ठा के व्रती हुए थे उसमें भी वर्ण व सम्प्रदाय गत किसी पार्थक्य का स्थान नहीं था । गांधी कल्पित रामराज्य रवीन्द्रनाथ कल्पित समाज की तरह ही है ।

[भूल जाएँ सब जाति-अभिमान, अवहेलना में 'दे अपना प्राण, एक हो जाए मान-अपमान, ब्राह्मण और जाठ']

—'गुरु गोविन्द' (१८८८), मानसी

इस प्रकार महात्मा गांधी का रामराज्य आदि रामायण के रामराज्य तथा अशोक प्रतिष्ठित ऐतिहासिक धर्मराज्य के अनुरूप है न कि उत्तरकाण्ड से रामचरित मानस काल तक भारतीय चित्त के सुचिरपोषित ब्राह्मण्य-रामराज्य के अनुरूप, महात्मा गांधी का हरिजन-उन्नयन तथा सर्वोदय परिकल्पना की बात स्मरण करने से ही इस मन्तव्य की सार्थकता समझी जा सकती है ।

(२)

अब मूल प्रसंग पर लौट आए, शताधिक वर्षों से भारतीय चित्त उत्तरोत्तर निविड़ रूप से राम राज्य की कल्पना में विभोर हुआ था, जबकि इसमें इस सुदीर्घ इतिहास में उस कल्पना को साकार रूप दान की कोई चेष्टा नहीं दिखाई दी । इसका

क्या कारण हो सकता है ? 'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी' यह स्वतः स्वीकृत वाणी इस क्षेत्र में सत्य क्यों नहीं हो पाई ।

वास्तव में जो रामराज्य की कल्पना भारतीय चित्त में मात्र कल्पना रूप में आर्विभूत हुआ था, कल्पना में ही रह गया एवं कभी भी भावना में परिणत नहीं हुआ । कल्पना मात्र हृदय की अनुभूति ही है । उसमें इच्छा व संकल्प का लेशमात्र भी अंश नहीं रहता और कुछ हो उठने की संकल्प अनुभूति का नाम ही भावना है । इस भावना में हृदय विलास का कोई स्थान नहीं । मात्र हृदय का आवेग कल्पना को विलास में परिणत करता हैं और संकल्प का वेश भावना को कर्म का रूप देता है । राम राज्य का आदर्श भारतीय चिन्ता में कल्पना रूप में ही दिखाई दिया था, संकल्प रूप में नहीं । इसीलिए उसकी परिणति भी काव्य विलास में ही घटित हुई, कर्म कीर्ति में नहीं ।

मौर्य परवर्ती काल की दुर्गत दशा में बौद्ध समाज इतिहास के अशोक को आदर्श पूर्ण धर्मराज्य रूप में कल्पना कर एवं उसके राज्यकाल को धर्मराज्य युग के रूप में चिन्हित कर सांत्वना प्राप्ति करना चाहता था । उसी की प्रतिक्रिया में ब्राह्मण समाज में राम राज्य अर्थात् ब्राह्मण्य धर्म राज्य का कल्पित आदर्श दिखायी दिया और भारतीय समाज कालान्तर में जितना ही दुर्दिन के सम्मुखीन होने लगा उतना ही वह कल्पना विलास भारतीय चित्र को निविड़ रूप से मोहाविष्ट करने लगा । इसलिए हम देखते हैं कि तुलसीदास के काल में भारतीय समाज के इतिहास में दुर्दिन का अंधकार जब गाढ़तम हुआ तभी रामचरितमानस में रामराज्य का चित्र उज्ज्वलतर ऐश्वर्य प्रभा में दिखाई दिया ।

वस्तुतः रामराज्य शक्तिहीनों का कल्पना विलास है, कर्महीनों की आत्म-वंचना है, असहायों की सांत्वना स्थल है । रामराज्य-कल्पना के मूल में यदि पौरुष संकल्प का वेग रहता तो भारतवर्ष का इतिहास दूसरा रूप धारण करता ।

केवल रामराज्य ही नहीं और भी नानाविद् कल्पना ने विभिन्न समय में विभिन्न स्थानों पर भारतीय चित्त को चरम दुर्गति के दिनों में भी सांत्वना देकर बचाए रखा । दृष्टान्त रूप में बंगाल के मंगल काव्यों के देव चरित्र-कल्पना की बात

उल्लेख की जा सकती है। इस प्रसंग में रवीन्द्रनाथ की उक्ति विशेष रूप से स्मरणीय है—

समाज जब स्वयं के चारों ओर से वेष्टनी में, स्वंय की वर्तमान अवस्था में सम्पूर्ण अवरूद्ध रहता है तब भी वह बैठ अपने उस अवस्था को कल्पना के द्वारा देवत्व से मण्डित करने की चेष्टा करता है। वह जैसे कारागार की दीवारों में चित्र अंकित कर कारागार को प्रासाद की तरह सजाने की चेष्टा करता है। उस चेष्टा में मानव चित्र की जो वेदना, जो व्याकुलता है वह बड़ी सकरुण है। साहित्य में उस चेष्टा की वेदना और करुणा हम शक्ति युग में मंगल काव्य में देख पाते हैं। तब समाज में उपद्रव-उत्पीड़न का जो आकस्मिक उत्पत्ति, जो अन्याय, जो अनिश्चयता थी, मंगल काव्य ने उसी को देव-मर्यादा देकर समस्त दु:ख-अवमानना को भीषण देवता के अनियंत्रित इच्छा के संग संयुक्त कर किंचित सांत्वना की प्राप्ति की एवं दु:ख क्लेश को भूला कर भक्ति के स्वर्ण मुद्रा का निर्माण किया। यह चेष्टा कारागार में कुछ सांत्वना अवश्य देती है किन्तु कारागार को प्रासाद नहीं बना सकती।''

—"बंगभाषा ओ साहित्य" (१९०२), साहित्य

पर जिस दुर्दिन के दु:खों में मोहमय चित्र को मनोरम तर्क व रेखा में अंकित कर सांत्वना प्राप्ति की चेष्टा की गई है वह केवल बंगाल में ही नहीं; समग्र भारतवर्ष के लिए ही सत्य है; केवल समाज में ही नहीं; धर्म के क्षेत्र में भी सत्य हैं। विश्व देवता को 'अंधकार के देवालय के कोण में' केवल "भजन-पूजन साधना-आराधना" के द्वारा उपलब्ध करने की कल्पना में उसी व्यर्थ चेष्टा का परिचय पाते हैं। रवीन्द्रनाथ की छन्दोबद्ध रचना में भी उसी व्यर्थ चेष्टा का चित्र अंकित है—

रचियाछिनु देउल एकखानि
अनेक दिने अनेक दुख मानि।

राखिनि तार जाना ला द्वार,
सकल दिक् अन्धकार,
भूधर हते पाषाणभार
यतने बहि आनि
रचियाछिनु दे उल एक खानि।

देवता टिरे बसाये माझखाने
छिलाम चेये ताहारि मुखपाने।

बाहिरे फेलि ए त्रिभुवन
भुक्तिया गिया विश्वजन
धेयान तारि अनुक्षण
करेछि एक प्राणे,
देवताटिरे बसाये माझखाने।

यापन करि अन्तहीन राति
ज्वलाये रात गन्धमय बाति।...

निद्राहीन बसिया एक चित्ते
चित्रकत एँकेछि चारिमिते।

स्वप्नमय चमत्कार

कोथाओ नाहि उपमा तार,

कत बरण कत आकार
के पारे वरणिते
चित्र यत एकेछि चारिमिते।

एमन करे गियेछे कत दिन
जानि ने किछु आछि आपन-लीन।

चित्त मारे निमेषहत
ऊर्ध्वमुखी शिखार मत,
शरीर खानि मूर्छाहत
मादेर तापे क्षीण।
एमन करे गियेछे कतदिन।

—'देउल' (१९९३) सोतारतरी

एक देवालय रचा था बहुत दिन में बहुत दुःख सहकर उसमें न खिड़की थी न द्वार, चारों ओर था अंधेरा भूधर से पाषाण भार ढोकर यत्न पूर्वक रचा था वह

देवालय देवता को मध्य में बिठाकर दृष्टि बँधी थी उसी के मुख पर इस त्रिभुवन को बाहर कर विश्वजन को भूलकर अनुक्षण्ण उसी के ध्यान में तन मन एक कर बैठा था। देवता को मध्य में रख अंतहीन रात्रि बीत जाती शत गंधमय धूप जलाकर एकाग्र चित्त निद्राहीन बैठकर बनाया, कितने ही चित्र दीवालों पर स्वप्नमय चमत्कार वह, कहीं उसकी उपमा नहीं, कितने वर्षा कितने आकार कौन उसकी वर्णन कर सकता, बनाए थे कितने चित्र दीवालों पर न जाने बीत गए कितने दिन अपने में मग्न निर्निमेष चित्र मेरा, ऊर्ध्वमुखी शिखा की तरह मूर्च्छाहत काया भावों के उताप से क्षीण ऐसे न जाने बीत गए कितने दिन, देऊल १८९३ सोत्तर तरी।

अल्प तुलना से ही पूर्वोधृत गद्यांश के संग इस पद्यांश का भावगत सादृश्य स्पष्ट समझा जा सकता है। एक में है संकीर्ण परिवेष्टना बद्ध रुद्धद्वार समाज-कारागार को ही शिल्प शोभित कर प्रासाद रूप में कल्पना कर सांत्वना प्राप्ति का प्रयास और दूसरे में विश्व देवता को संकीर्ण धर्म बोद्ध में शिल्प मण्डित देवालय में कल्पना बद्ध कर भक्ति वृत्ति को चरित्रार्थ करने की चेष्टा की गयी है किन्तु किसी क्षेत्र में ही यथार्थ साफल्य प्राप्ति संभव नहीं, कल्पना के द्वारा कारागार को प्रासाद नहीं बनाया जा सकता और भक्ति निष्ठा की शक्ति के द्वारा मन्दिर की कल्पना से देवता को विश्वदेवता में परिणत नहीं किया जा सकता है।

रामराज्य की कल्पना उल्लेखित दृष्टान्तों के संग पूर्ण एक न होने पर भी तुलनाहीन नहीं है। बंगला मंगलाकाव्य में हम सामाजिक असहायावस्था में सांत्वना प्राप्ति की चेष्टा करते हैं; 'देऊल' कविता में संकीर्ण देव कल्पना की सहायता से परम भक्ति को चरित्रार्थ करने की आकांक्षा पाते हैं और राम-राज्य की मनोरम चित्र रचना में पुनः पुनः प्रयास में राष्ट्रगत दैन्य दुर्दशा से मुक्ति व सांत्वना प्राप्ति की अलस कामना निहित है। रामराज्य की कल्पना में कारागार को ही मन ही मन में प्रासाद बनाने का प्रयास नहीं है, कारागार के बाहर एक समय में प्रासादावास सुख के अकल्पनीय स्मृति को पालित कर परितृप्ति प्राप्ति की वासना निहित है। कहा जा सकता है कि इस तरह के अलस स्वप्न विलास में उद्दाम या पुरुषकार का कोई स्थान हीं, केवल निष्क्रियता का समर्थन, आत्म प्रताड़ना की छलना है।

रामराज्य वस्तुत: एक स्वप्न राज्य है, परी कथा के राज्य की तरह ही अलीक किन्तु मनोरम है । विचार करने पर पाया जाता है कि भारतवासी इस स्वप्न राज्य के चिरन्तन अधिवासी हैं । जब भारत-इतिहास का बहिरंग शक, हूण, पठान, मुगल आदि दुर्धर्ष आगंतुक के उन्माद कलरव से मुखरित था, तब भी इतिहास के नेपथ्यवर्त्ती स्वप्नमय रामराज्य के अधिवासी भारतीय जन समाज सुख निद्रा में निमग्न था, दुर्धर्ष आगंतुक दल उस स्वप्नराज्य के प्रवेश पथ का संधान नहीं पा सके थे, जिस कारण भारतीय जन समाज क सुख-स्वप्न में भी व्याघात नहीं डाल पाये थे । युग-२ से इतिहास के रंगमंच पर कितने राज्य निर्मित हुए एवं जल की बुलबुलों की तरह शून्य में विलीन हो गये किन्तु उससे अंतरालवर्त्ती स्वप्नमय रामराज्य का क्षणिक के लिए भी शान्ति भंग नहीं हुआ । अन्त में उस सुख स्वप्न के अवसान घटित होने का उपक्रम हुआ जब आधुनिक काल में अंग्रेज अपनी नवशिक्षा के मरालहस्त से इतिहास का द्वार उद्घाटन कर भारतीय चित्त के अन्त: पुर में प्रविष्ट हुए । इस स्वप्न भंग की बात को थोड़ी देर बात स्पष्ट करता हूँ ।

यह जो भारतीय कल्पना लालित रामराज्य का आदर्श है सहसा प्रतीत हो सकता है कि यह यूरोपीय इतिहास के पवित्र रोमन साम्राज्य के आदर्श का भारतीय प्रतिरूप है । थोड़े विचार से समझा जा सकता है कि यह ठीक नहीं, इतिहास अवश्य कहता है कि उक्त रोमन साम्राज्य वास्तविक पक्ष में पवित्र नहीं था, रोमनों के लिए भी नहीं था एवं साम्राज्य पद वाच्य भी नहीं था किन्तु इतिहास कहता है कि इन तीनों विशेषणों के मूल में कुछ वास्तव सत्य अवश्य था । पवित्र रोमन साम्राज्य एक कल्पना मात्र नहीं है । साम्राज्य की शक्ति व सम्पत्ति न होने पर भी साम्राज्य सुलभ समारोह, सम्मान व गौरव उसका था । प्राचीन रोमन नगरी के साथ उसका परोक्ष योग था एवं उत्पत्ति सूत्र में रोमन पोप के पृष्ठ पोषकता के फलस्वरूप धर्म संयोग युक्त 'पवित्र' विशेषण पर उसका दावा था, पवित्र रोमन साम्राज्य के असामान्य गौरव व बहुलांश में तत्कालीन ईसाई समाज के कल्पना युक्त होने पर भी वह पूर्ण रूप से वास्तव प्रतिष्ठाहीन नहीं था । दूसरी ओर भारतीय रामराज्य कल्पना के मूल में वास्तविक ऐतिहासिक सत्य का लेशमात्र भी नहीं है । इसके मूल में विगतकालीन सूक्ष्म सुख स्मृति का आश्रय ले दुर्गत जन समाज को सांत्वना

देने की प्रेरणा नीति थी इसीलिये भारतीय पवित्र राम राज्य को यूरोप के पवित्र रोमन राज्य के संग पर्यायमुक्त नहीं किया जा सकता ।

भारतीय आदर्श कल्पना के सर्वांग सुन्दर धर्मराज्य का नामांतर ही रामराज्य है । प्रतीत हो सकता है कि राम राज्य पाश्चात्य यूरोपिया का ही भारतीय प्रतिरूप है । रामराज्य यूरोपिया दोनों ही वास्तव निरपेक्ष हैं, इसलिए इन दोनों की तुलना को सार्थकहीन नहीं कहा जा सकता किन्तु इन दोनों का पार्थक्य भी उपेक्षणीय नहीं है । यूरोपिया का लक्ष्य भविष्य की ओर है और रामराज्य की दृष्टि अतीत की ओर, एक में आशा का आभास है दूसरे में नैराश्य का दीर्घ श्वास है । एक में उद्‌गम की प्रेरणा है दूसरे में निष्क्रियता की छलना है ।

(३)

भारत के इतिहास की एक प्रधान त्रुटि यह है कि यहाँ राष्ट्र-चेष्टा ने कभी भी जन-समाज का आश्रय नहीं लिया, जो भी राष्ट्र चेष्टा इस देश में दिखाई दी वह सभी कीर्ति लोलुप उद्योगी पुरुषों की उच्चाकांक्षा व कर्म प्रचेष्टा का फल है । चन्द्र गुप्त मौर्य, समुद्रगुप्त, हर्ष वर्धन व शिवाजी आदि नृपतिगण ही भारतीय राष्ट्र चेष्टा के उद्योगता मात्र रहे हैं । इनमें भी शिवाजी के अतिरिक्त किसी ने भी राष्ट्र तरणी को चलाने के लिए जन समाज को नहीं बुलाया, किसी ने नहीं कहा 'संभालो पतवार संभाले खिचों रे भई सब खिचों' जबकि समस्त राष्ट्र क्रम के अच्छे बुरे का फल भागी जन समाज ही है । इसलिए भारतीय जन समाज सुख शान्ति की आशा में पूर्ण रूप से ही राजमुखोपेक्षी था किन्तु जनसाधारण के आशा अनुरूप आदर्श प्रजा वत्सल राजा इतिहास में विरल हैं । भारत इतिहास में प्रजा के आशानुरूपी आदर्श नृपति एकमात्र अशोक ही हो सकते हैं किन्तु वे बौद्ध थे इसीलिए अ-बौद्ध समाज ने उन्हें नहीं स्वीकारा । उसके बाद ही विक्रमादित्य का नाम उल्लेखनीय है किन्तु वे राजेश्वर्य की महिमा से ही जन चित्त को मुग्ध करते हैं, प्रजा वात्सल्य व धर्म परायणता की महानता से उनकी भक्ति श्रद्धा को आकर्षित नहीं कर पाए इसलिए वे पाश्चात्य के महाप्रतापी शार्लेमान की तरह अद्‌भुत कर्मा की प्रसिद्धि पाते हुए भी आदर्श नृपति के रूप में लोक हृदय में भक्ति का आसन न पा सकें । यदि ब्राह्मण समाज में अशोक की तरह किसी लोक परायण धर्माश्रयी नृपति का

आविर्भाव होता, तो लोक समाज निश्चय ही उसकी स्मृति को भक्ति के द्वारा मण्डित कर पूर्ण विलुप्ति से बचा कर रखता, वस्तुत: इतिहास में इस प्रकार के आदर्श नृपति का आविर्भाव न होने के कारण ही भारत चित्र ने रामायण-महाभारत के रामराज्य व धर्म राज्य की कल्पना को प्राणपण से पकड़े रखा ।

रामराज्य की कल्पना ने भारतीय जन चित्त को मोहाच्छन्न व निष्क्रिय बनाए रखा किन्तु एक विशेष उपकार भी किया था । इसका महत्त्व कम नहीं है कि एक ही स्वप्न जाल के वेष्टनी में आबद्धकर इस कल्पना ने समग्र भारतीय जन चेतना में, ऐक्य संचार किया था । एक ही राजशासन से समग्र देश में जो ऐक्य चेतना का आविर्भाव होता है, शताधिक वर्षों से ऐतिहासिक उत्थान-पतन-आलोड़न के अंतराल में "रामराज्य की प्रेरणा उसी ऐक्य चेतना के द्वारा भारतीय चित्त को धीरे-धीरे एक बंधन में दृढ़ता से बाँध रहा था एवं खण्ड विच्छिन्न विक्षिप्त भारत के दुर्दिन को दूर करने की भूमिका रच रहा था । उद्बोधन मंत्र के उद्‌गाता अति पराक्रम जन नेता क दुर्लंघ्य आह्वान की प्रतीक्षा मात्र की, अंतत: वह आह्वान महात्मा गांधी के कंठ से ध्वनित हुआ ।

इस प्रसंग में ऐतिहासिक विन्सेंट स्मिथ की एक उक्ति उद्धृत है—

The political unity of all India, though never attained perfectly in fact, always was the ideal of the people throughout the contries....'Hindustan from coubul to the valley of Assam, and the island of ceyrow, is regarded as one country, and dominion in it is associated in the minds of the people with the predominance of one monareh.... The inmemorial persistence of that ideal goes a long way to explain the acquiescence of India in British rule, and was at the botton of the passionate out brust of loyal devotion to their King-Emperor....

—Oxford History of India. (1920), P. IX-X

सागर युक्त भारत भूमि के राष्ट्रीय ऐक्य के प्रति भारतीय जन मानस की यह जो चिरंतन उन्मुखता है, सुचिरपोषित राम राज्य की आदर्श कल्पना ने उस उन्मुखता की सृष्टि में कम सहायता नहीं की। फलस्वरूप समग्र भारतवर्ष में एक अंग्रेज राज्य प्रतिष्ठा के प्रति भारत चित्त में तीव्र विमुखता नहीं दिखाई दी वरन् अनुकूलता ही दिखाई दी थी। रघुवंशीय जन आसमुद्रक्षितिशों के प्रति चरम राजभक्ति में दीक्षित थे जिस कारण महारानी विक्टोरिया व सम्राट पंचम जार्ज के प्रति अकुंठित राज भक्ति प्रकाश में उन्हें बाधा नहीं थी किन्तु भारतीय जनचेतना ने जब स्पष्ट रूप से इसे अनुभव किया कि अंग्रेजराज्य राम राज्य का प्रतिरूप नहीं है एवं अंग्रेज नृपति भी रघुपति राम नहीं है, तब अंग्रेज राज्य व अंग्रेज नृपति के प्रतिकूल हो उठने की भारत चित्त विलम्बित नहीं हुआ। दूसरी ओर जब महात्मा के कंठ से ऐक्य की वाणी व नर राम राज्य की प्रतिष्ठा का आह्वान ध्वनित हुआ, तब समग्र भारतवर्ष ने ही क्षणमात्र में ही उनके प्रति एक वाक्य में आनुगत्य प्रकाशित किया एवं उनके नेतृत्व में एक चित्त होकर स्वराज्य प्रतिक्षण में संकल्पबद्ध हुए—इतिहास में ऐसी विस्मयकारी घटना नहीं घट सकती थी, यदि युगों से रामराज्य के आदर्श ने इस महाव्रत की योग्य भूमिका की रचना नहीं की होती।

आधुनिक काल में जिसे हम emotional integration या भावगत एकता बंधन के नाम से जानते हैं, राम राज्य को आदर्श न सदियों से अगणित भारत प्रजा के अंतर में उसी के उपादान को संचित कर रखा था किन्तु जो भाव कल्पना मात्र थी महात्मा जी ने उसी को कर्म प्रचेष्टा में रूपांतरित किया, जो अलस निष्क्रियता था उसी को शक्ति के वेग में संचारित किया, जिसका लक्ष्य अतीत की ओर था उसकी दृष्टि को भविष्य की ओर घुमा दिया, जो कविगोष्ठी में ही निबद्ध था उसे बृहत् जन समष्टि में परिव्याप्त कर दिया एवं सर्वोपरि जो ब्राह्मण्य वर्णाश्रय धर्म के घेरे में आबद्ध या उसे सर्व जनीनता के उदार आकाश में मुक्ति दी, यहीं पर गांधी नेतृत्व की महत्ता व गौरव है।

महात्मा जी ने जिस आपात अकल्पनीय को वास्तव में परिणत किया वह उनकी असामान्य व्यक्तित्व के उपरान्त भी असंभव था यदि काल परिवेश उनके अनुकूल नहीं होता, शताधिक वर्षों से इतिहास के प्रचण्ड वेग से जब भारतवर्ष में सर्वत्र राज्य साम्राज्य का आविर्भाव तिरोभाव हो रहा था, तब भी उस विप्लव के

मध्य में भारत वर्ष किसी माया बल से एक मानस जगत् की रचना कर उसमें राम राजत्व के छत्र छाया में युगों से परम निश्चिन्ता व सुख से दिन व्यतीत कर रहा था। उस माया राज्य में बहिर्जगत् से सत्य-जीवन के प्रवेश का अधिकार नहीं था, आकाश के प्रकाश पतन का भी वहाँ प्रवेश निषिद्ध था इस मायामय रामराज्य में स्वाधीन चिन्ता का वेग भी नहीं था। कर्मोद्यान की प्रेरणा भी नहीं थी। अंत में अंग्रेजों ने आकर अचलायतन के उस कठिन प्राचीर वेष्टनी को तोड़कर उस स्वप्न राज्य में प्रवेश किया उनके हाथों की मशाल के इतिहास शिखा की तीव्र द्युति से उस राज्य का सुचिर संचित घनांधकार दूर हुआ एवं परिणामस्वरूप उस राज्य के सुख निद्रा में डूबी हुई प्रजा का स्वप्नभंग हुआ और उनमें कर्मोद्यान का चांचल्य जाग उठा। ऐसे में उनके कानों तक वास्तव जीवन के नवरामराज्य प्रतिष्ठा की अमोघ आह्वान वाणी आ पहुँची इसीलिए जनगण के कंठ में भी अश्रुत पूर्ण ध्वनि जग उठी—

हे नामक, तुले लओ तोमार उदार जयमेरी,
कराह आह्वान।
आमरा दाँड़ाव उठि, आमरा छुटिया बाहिरिव,
अर्पिव परान।
चाब ना पश्चाते मोटा, मानिब ना बन्धन क्रन्दन,
हेरिब ना दिक्,
गनिब ना दिनक्षण, करिब ना वितर्कविचार,
उद्दाम पथिक।
मुहूर्ते करिब पान मृत्युर फेनिल उन्मत्तता
उपकण्ठ भरि, —
खिन्न शीर्ण जीवनेर शत लक्ष धिक्कार लाञ्छना
उत्सर्जन करि॥

"हे नायक उठा लो तुम्हारी उदार जयमेरी करो आह्वान, हम उठ खड़े होंगे हम दौड़ कर बाहर जाएँगे, प्राणों को अर्पित करेंगे, पीछे मुड़कर नहीं देखेंगे,

बँधन का क्रन्दन नहीं बनेंगे, हम दिक् विचार नहीं करेंगे, गणना नहीं करेंगे दिन क्षण, वितर्क विचार नहीं करेंगे, होंगे उद्दाम पथिक क्षणों में करेंगे पान आकंठ मृत्यु के फेनिल उन्मत्तता को, खिन्न शीर्ण जीवन के शत लक्ष धिक्कार लांछना का उत्सर्जन कर ।"

सुदीर्घ काल से मोहाविष्ट भारतीय जन समष्टि के इस आकस्मिक अभ्यु-त्थान ने बहुतों के मन में विस्मय का संचार किया, उनको यह अप्रत्याशित जन-जागरण महात्मा जी की जादुई प्रक्रिया का फल प्रतीत हुआ । परन्तु जन हृदय में युगों से इतिहास की प्रेरणा शक्ति अगर स्तब्ध होकर संचित न रहती तो महात्मा जी के लिए भी इस अराध्य का साधन संभव नहीं होता । जड़त्व में प्राण संचार कर सके, पाषाण को प्रदीप्त कर सकें ऐसी जादुई शक्ति आज भी मानव हस्तगत नहीं कर पाया है, वस्तुत: महात्मा जी किसी जादुई शक्ति के अधिकारी नहीं थे, जिस शक्ति का तत्त्व उनके अधिगत था उसका नाम जन शक्ति है । वे जानते थे कि एक अपरिमित शक्ति भारतीय जन-पुंज में स्तब्ध पड़ी है उसको गति प्रदान करने से ही देश व्यापी पाषाण भार क्षणों में दूर हो सकती है, जन हृदय में पुँजीभूत यह जो अपरिमेय स्तब्ध शक्ति है वह सुदीर्घ काल से आदर्श धर्मराज्य व रामराज्य की कल्पना उत्स से ही संचित हुई है इसीलिए महात्मा जी ने उस महत्ती स्तब्ध शक्ति को धर्म नीति के प्रशस्त्र पथ पर गतिप्रदान कर प्रवाहित किया, दूसरे पथ पर प्रशस्त करने पर वह शक्ति प्रवाह असमय ही व्यर्थता की मरूबालुका-राशि में विलुप्त हो सकती थी इसलिए उनके सम्मुख भारत व्यापी नव-राम राज्य के आदर्श को प्रस्तुत किया । उसका यह नेतृत्व व जन शक्ति संचालन व्यर्थ नहीं गया क्योंकि रवीन्द्रनाथ की तरह वे भी नि:संशय इस बात पर विश्वास करते थे—

"समाज जब परिव्याप्त भावावेग में स्वयं की अवस्था बंधन के लंघन कर आनन्द व आशा से उच्छृसित होता रहता है तब वह पथ के समीप...जो सामान्य उपकरण पाता है उसी के द्वारा इन्द्रजाल की सृष्टि कर सकता है, ऐसी अवस्था में क्या हो सकता है एवं क्या नही, यह पूर्ववर्ती अवस्था में कोई अनुमान नहीं लगा सकता ।

एक नूतन आशा का युग चाहिए। उस आशा का युग में मानव स्वयं की सीमा को नहीं देख पाता है, सब कुछ ही संभव प्रतीत होता है। समस्त को संभव मानकर जो शक्ति पायी जाती है उसमें भी अनेक असाध्य साध्य हो जाते हैं एवं जिसकी जितनी शक्ति है वह पूर्ण रूप से कार्य करती है।"

—'बंगभाषा ओ साहित्य' (१९०२) साहित्य

अतएव स्वीकार करना होगा कि राम राज्य का इतिहास पूर्ण रूप में ही व्यर्थता का इतिहास नहीं है। देश के सम्मुख राम राज्य का इतिहास होने के कारण ही महात्मा जी के लिए भारतीय जनगण को नूतन प्राणों से संजीवित न नूतन आशा से उद्‌बुद्ध करना संभव हो सका था।

—अनुवादिका

सुमिता सिन्हा